(२) क्या हनुमानादि वानर, नर थे ?

(१) 'श्रीसनातनधर्मालोक' ग्रन्थमालाके आठ पुष्पोंके प्रकाशनके बाद यह नवम सुमन पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत है। इसमें इतिहासचर्चा, कण्टक-शोधन, पुराण-इतिहासचर्चा, पुराणचर्चा, वेदचर्चा, सैद्धान्तिकचर्चा—यह छः स्तम्भ रखे गये हैं; तदनुकूल निबन्ध इसमें ग्रथित किये जाएँगे। पहले-पहल इतिहासका एक प्रसिद्ध विषय इसमें रखा जा रहा है कि—'क्या हनुमानादि वानर, नर थे ?'। 'आलोक'-पाठक इसे मनोयोग देकर देखें। इसमें आजकलमें उठनेवाली शङ्काओंका बहुत प्रकारसे समाधान किया जायगा।

आजकल प्रच्छन्न-बौद्ध प्रतिपक्षी जब रामायणादि इतिहासमें वर्णित किसी विषयको अपनी संकुचित बुद्धिमें प्रविष्ट होते नहीं देखते; तब पहले तो 'गप्प' वा 'प्रक्षिप्त' कहकर उसे बहिष्कृत करना चाहते हैं। फिर भी जब उससे अपना गला छूटता नहीं देखते, तब प्रकारान्तरसे उसका समाधान करनेकी चेष्टा करते हैं। उस समय वे ग्रन्थकारसे विरुद्ध निर्मूल कल्पनाएँ करनेमें भी नहीं हिचकते; आ रही हुई असङ्गतियोंका भी वे विचार नहीं करते।

(२) इस प्रकारके विषयोंमें 'हनुमानादि वानर थे, वा नर' यह भी एक प्रश्न उपस्थित होता है। इसमें वे यह कहते हैं कि—

'हनुमानादि रामके सैनिक, मनुष्य थे। वस्तुतः बन्दर नहीं थे। वनमें रहनेवाले होनेसे उन्हें उपहाससे वानर कहा जाता था। वे पशु नहीं थे, खरे-खासे मनुष्य थे। केवल नागरिक सभ्यता न होनेसे वे पशु बुलाये जाते थे। वनवासी (जंगली) होनेसे ही वे कुरूप थे। कूदने-फांदनेमें होशियार थे, इसीलिए रीछ-वानर आदि कहे जाते थे। अथवा वे वानर-नामक एक क्षत्रिय मानुषी जातिवाले थे।'

इस प्रकारकी कल्पनाएँ वे इसलिए करते हैं, क्योंकि-रामायणमें वर्णित वानरोंका कर्म उनकी दृष्टिमें बन्दरोंके योग्य प्रतीत नहीं होता; परन्तु एकदेशी बुद्धि तथा कूपमण्डूक दृष्टि रखनेवाले वे लोग यह विचारनेका कष्ट नहीं उठाते कि-जैसे रामायणवर्णित उनका कार्य वानरगणसाध्य नहीं; वैसे ही उनके वर्णित कार्य मनुष्यसाध्य भी नहीं-यह विचार करनेसे स्पष्ट हो जाता है। तब फिर वे ग्रन्थकारके अभिप्रायसे विरुद्ध उन्हें मनुष्य भी क्यों कहते हैं ? इस असङ्गतिको वे क्यों नहीं विचारते ?। वे श्रीरामसेनाके रीछ-बन्दरोंको आजकलके रीछ-बन्दरोंकी तराजूसे तोलना चाहते हैं। रामायणके निर्णय-को ताकपर रखकर अपना नवीन निर्णय देते हैं कि-'वनवासी मनुष्य होनेसे इन्हें वानर कहा जाता था' पर उनकी यह धारणा नितान्त ही भ्रान्त है। हम रामायणको मथकर इस विषयमें उसके दिङ्मात्र उद्धरण देंगे।

(३) उन्हें यह स्मरण रख लेना चाहिये कि-यदि 'वनवासी'

होनेसे ही उन्हें 'वानर' कहा जाता था; तब वनवासी सब ऋषि-मुनि तथा वानप्रस्थ लोग जो कि—'वनसम्बन्धि फलादिकं रातिगृह्णाति' (हनुमान् आदि बन्दर थे या मनुष्य' पृ० १२७) वनके फल-अन्न आदि खाया करते थे, ग्राम्य अन्न-फलादि नहीं; वानर क्यों नहीं कहे गये ? १४ वर्ष वनमें रहते हुए और वनके कन्दमूल फल खाते हुए भी श्रीराम-लक्ष्मणको 'वानर' क्यों नहीं कहा गया ? और वनमें रहती हुई तथा वनमें छोड़ी गई और वहीं रहती हुई श्रीसीताको 'वानरी' क्यों नहीं कहा गया ? वनवासी होनेसे वन्य, वा वनी, वा वनवासी, वा वनेचर, वा आरण्यक तो कहा जाता है, परन्तु 'वानर' नहीं। 'वानर' यह तो पशु जातिका रूढ वा योगरूढ नाम है। इसलिए उसे अमरकोषमें मनुष्यवर्गमें न कहकर सिंहादिवर्गमें रखा गया है। तब प्रतिपक्षियोंकी पूर्व कल्पना निर्मूल है।

(४) इसके अतिरिक्त हनुमानादिको रामायणादिमें केवल 'वानर' शब्दसे नहीं कहा गया; जिससे उन्हें उपहाससे अथवा वनमें निवासवश 'वानर' कहा गया हो; बल्कि वे वानरोंके सभी पर्यायवाचकोंसे भी बुलाये गये हैं। अमरकोषके द्वितीय-काण्डमें सिंहादिवर्गके ३रे पद्यमें—'कपि-प्लवङ्ग-प्लवग-शाखामृग-वलीमुखाः। मर्कटो वानरः कीशो वनौकाः' यह नौ नाम बन्दरोंके आये हैं। दसवाँ बन्दरोंका प्रसिद्ध नाम 'हरि' भी है, जिसे अमरकोषके ३यकाण्ड नानार्थवर्गमें 'शुकाहि-कपि-भेकेषु हरिर्ना' (१७५) कहा गया है। रामायणमें इन सभी नामोंसे उन्हें

क्वचित् नहीं, किन्तु सर्वत्र, किसी विशेष समयमें नहीं, किन्तु सभी समयोंमें, एक बार भी नहीं, किन्तु बार-बार बताया गया है।

हाँ, अमरकोषके अर्वाचीन होनेसे, और वाल्मीकिरामायण-के अत्यन्त प्राचीन होनेसे, उसमेंके कई नाम रामायणमें प्रयुक्त न किये गये हों, या हमारी दृष्टिसे च्युत होजानेसे हमें रामायणमें न मिले हों, यह अन्य बात है, पर उपहासमें वा वनवासी मनुष्य होनेसे यह नाम नहीं रखे गये, यह आगे सम्यक्तया सिद्ध किया जायगा। उपहास बार-बार नहीं होता, नहीं तो वैरस्य हो जाता है। बार-बार 'वनवासी' कहना भी व्यर्थ वा निन्दनीय हो जाता है। पर यहाँ तो उनकी प्रशंसा ही आई है। स्वाभाविकतामें तो बार-बार वैसा कहनेसे भी वैरस्य नहीं होता।

(५) वैसे तो हनुमान आदिके साथ उक्त नामोंका प्रयोग रामायणमें सैकड़ों बार मिलता है; पर हम विस्तारभयसे दो-दो वा तीन-तीन ही वचन देंगे। पाठक दिङ्मात्र देखें।—पहले हम आक्षेप्ताओंके आचार्य स्वा० द० जीके 'संस्कृतवाक्यप्रबोध' से एक वाक्य देते हैं—'अयं महाहनुत्वाद्धनुमान् वर्तते' यह बन्दर बड़ी ठोडी वाला होनेसे हनुमान् है' (ग्राम्यपशुप्रकरण पृ० ४४) यह वाक्य हनुमानको बन्दर सिद्ध कर रहा है। जैसाकि वाल्मी. ६।२८।१५ में हनुमानका इतिहास है, इन्द्रके वज्रके लगनेसे हनु टूटकर बड़ी होजानेसे हनुमान नाम हुआ। नहीं तो स्वामीजी इसे किसी मानुषी प्रकरणमें रखते, ग्राम्यपशुप्रकरणमें

नहीं। अस्तु। अब 'आलोक' पाठकगण वाल्मीकिरामायणके प्रमाण देखें।

१ कपि—'संगम्य कपि मुख्येन' (किष्किन्धा. ३।१८) 'कपिः... हनुमान्' (२।२६) 'कपिरूपं परित्यज्य हनूमान् मारुतात्मजः' (३।२) इन स्थलोंमें हनुमान्केलिए बन्दरके प्रथमपर्यायवाचक 'कपि' शब्दका प्रयोग है।

२ प्लवङ्गमः—'तौ त्वया (हनुमता) प्राकृतेनेव गत्वा ज्ञेयौ प्लवङ्गम !' (कि. २।२४) हनूमन्तं प्लवङ्गमम्' (३।४३) 'अहं हि मातङ्गविलासगामिना प्लवङ्गमानामृषभेण धीमता' (२४।४०) यहाँपर हनुमान् आदिकेलिए 'प्लवङ्गम' शब्दका प्रयोग है, जो बन्दरका दूसरा पर्यायवाचक है। व्याकरणानुसार विहङ्ग-विहङ्गमकी भांति प्लवङ्ग-प्लवङ्गम दोनों शब्द बनते हैं।

३ प्लवगः।—'हनुमान् प्लवगोत्तमः' (कि. ४।३) 'सुग्रीवः प्लवगाधिपः' (२।५) तं दृष्ट्वा प्लवगं' (१।८१) इन स्थलोंमें हनुमानादिकेलिए 'प्लवग' शब्द आया है, जो बन्दरका ही तीसरा पर्यायवाचक है। श्रीबाणभट्टके हर्षचरितमें सुग्रीवका नाम श्लेषालङ्कारमें 'प्रवरसेन' आया है—प्रवे—प्लवने रसो—रागो येषां ते प्रवरसाः, प्लवङ्गा वानराः—तेषामिनः—स्वामी। सो उसे भी सुग्रीव तथा उसकी सेना बन्दर इष्ट है, तभी तो उसने 'कपिसेनेव सेतुना' लिखा है, 'कपि' बन्दर का नाम होता है, वनवासी मनुष्यका नाम नहीं।

४ शाखामृगः।—'अहो ! शाखामृगत्वं ते व्यक्तमेव प्लवङ्गम !'

(कि. २।१७) 'ततः शाखामृगाः सर्वे, (२।१०) 'शाखामृग श्रेष्ठो' (१।१६३) यहाँ सुग्रीव-हनुमानादिकेलिए बन्दरका क्रम-प्राप्त ४र्थ पर्यायवाचक 'शाखामृग' शब्द आया है। कोई मनुष्य-जाति बानर वा उसके पर्याय-वाचकोंसे नहीं कही जाती। 'शाखामृग' के 'मृग' शब्दसे पशु होना स्पष्ट है। मनुष्य मृग, वा 'शाखामृग' नहीं कहा जाता।

(ख) जो लोग इसमें दृष्टान्तस्वरूप नाग, सर्प, सर्पसत्र आदि-में जनमेजयका 'एक मनुष्य जातिविशेषोंसे युद्ध' अर्थ बताते हैं; यह सब उनकी निर्मूल कल्पनामात्र है, नहीं तो वहाँ उसके पर्यायवाचक 'भुजङ्ग, भुजङ्गम, भुजग, सर्प आदि न होते। जो इसमें 'मत्स्यराज विराट' आदि मनुष्य जातिका उदाहरण देते हैं, यह उनका विषम उपन्यास है। यह तो अवश्य एक देशका नाम था—यह मछलीवाचक नहीं। नहीं तो इन बन्दरोंकी तरह उसके पर्यायवाचक मीनपति, झषपति आदि भी आते, पर नहीं आते। इसी प्रकार कहीं 'वत्स' देश आया है, वहाँ भी 'बछड़ा' अर्थ नहीं, क्योंकि—उसके पर्यायवाचक नहीं दिये गये; पर रामायणादिमें तो वानरादिके पर्यायवाचक आये हैं। तब विषम दृष्टान्त होने से यहाँ उनकी बात नहीं घटती।

(ग) हाँ, मनुके साथ जहाँ 'मत्स्य'का वर्णन आता है, वहाँ विशेष मछली ही गृहीत होती है, क्योंकि वहाँ उसके पर्यायवाचक देखे जाते हैं। मनुस्मृति (७।१९२) पद्यमें 'कुरुक्षेत्रांश्च मत्स्यांश्च' यहाँ बहुवचन तथा अन्य देशोंका साहचर्य भी देशका नाम बता

रहा है, अतः यह वादियोंका दृष्टान्त भी विषम है।

(ज) भविष्य-पुराणमें 'गुरुण्डा वानराननाः' से भविष्यद्वारा अंग्रेजोंको 'वानरानन' कहा है, वानर कहीं नहीं कहा; अतः यह वादियोंका दृष्टान्त भी विषम है। अब भी प्रायः अंग्रेजोंका मुख वानरोंकी भांति मालूम होता है। पर वे वानर नहीं कहे जाते। इसी प्रकार महाभारतमें 'विडालाक्ष' एक राजा है। यहाँ उसे बिल्लेकी भांति आंखों वाला तो कहा है, ऐसे तो आजकल भी मिलते हैं; पर उसे बिलाव जाति वाला नहीं कहा, वा नहीं कहा जाता; और फिर यह नाम है। हाँ, आजकल कई नाग जातिके पुरुष कहे जाते हैं; वे अवश्य यहाँ मनुष्य हैं। इसका प्रमाण यही है कि—उनके साथ उनके पर्यायवाचक 'सर्प भुजङ्ग' आदि नहीं कहे जाते। श्रीहरदयाल नाग, कलकत्ताके डा० कालीदास नाग आदि कभी सर्प वा फणी, सांप वा वैसी आकृतिसे नहीं कहे जाते; पर रामायणमें वानरोंको उनके सभी पर्यायवाचकोंसे तथा वैसी आकृति, वैसी प्रकृतिसे वर्णित किया गया है; अतः यहाँ दृष्टान्त-दार्ष्टान्तके वैषम्यवश इन दृष्टान्तोंके देने वाले प्रतिपक्षियोंका पक्ष निराधार है। कहीं भी कोई मनुष्य जाति चाहे वह वनवासी हो, कपि, प्लवङ्ग, प्लवग, शाखामृग आदि नामसे नहीं कही गई। अब 'आलोक' पाठक क्रम-प्राप्त वानरका ५वां पर्यायवाचक 'वलीमुख' शब्द रामायणमें प्रयुक्त देखें।

५ वलीमुखः।—'यावन्न लङ्कां समभिद्रवन्ति वलीमुखाः पर्वतकूटमात्राः। दंष्ट्रायुधाश्चैव नखायुधाश्च' (युद्ध. १४।३) 'समुत्पत्य

वलीमुखाः' (२०।३१) यहां पर बन्दरोंको उनके पर्यायवाचक 'वलीमुख' नामसे कहा गया है। यदि यह यहां मनुष्य-जाति इष्ट होती; तो यहाँ बन्दरका पर्यायवाचक न दिया जाता। यदि कहीं आजकल किसी मनुष्य जातिका 'वानर' यह नाम आता भी हो, तथापि वहां उसके पर्यायवाचक कपि, वलीमुख आदि नहीं आते; और उसे 'वन्दर' भी नहीं कहा जाता। परन्तु रामायणमें वानरके सभी पर्यायवाचक तथा उनके नखायुध-दंष्ट्रायुध आदि चिह्न एवं पशुत्व आ जानेसे यहाँ कोई मनुष्य जाति सिद्ध न हुई; तब प्रतिपक्षीका पक्ष निर्मूल हो गया, क्योंकि मनुष्य नखायुध वा दंष्ट्रायुध नहीं होते।

(ख) अब और भी देखिये।—वादीको हमने 'प्रतिपक्षी' कहा है। यहां हमने भी उसे पक्षी जाति वाला नहीं बताया। यदि वैसा इष्ट होता; तो हम उसे प्रतिविहङ्ग, 'प्रतिखग' आदि पर्यायवाचकोंसे कहते; पर नहीं कहते; तब रामायणके जाम्बवान् आदि रीछ, हनुमानादि वानर, जटायु आदि पक्षियोंके जिनके प्रायः सभी पर्यायवाचक रामायणमें आये हैं; उन्हें मनुष्य बनाने की प्रतिपक्षियोंकी कल्पना विषम दृष्टान्त होनेसे कट गई।

६ मर्कट—बन्दरके छठे पर्यायवाचक 'मर्कट' शब्दका प्रयोग हमें रामायणमें नहीं मिला। या तो हमारी दृष्टिसे च्युत हो गया हो, अथवा यह शब्द कदाचित् अर्वाचीन होनेसे प्राचीन रामायणमें उस कालमें प्रयुक्त न होता हो। जैसे 'पिङ्ग' यह बन्दरका नाम (कि. २६।२५ आदि स्थलोंमें) मिला है, पर

आजकलके कोषोंमें प्रायः प्रयुक्त नहीं। यदि उस समय 'मर्कट' शब्द वानरोंकेलिए प्रयुक्त हुआ करता, तो वाल्मी०में वानरोंके अन्य नामोंकी भांति यह नाम भी अवश्य मिलता, परन्तु 'नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोपि' की प्रतिज्ञा करनेवाले गो० तुलसीदासने अपने 'मानस'में 'पुनि जाइ पुकारे प्रभु 'मर्कट बल भूरि' इत्यादि स्थलोंपर उसका प्रयोग किया है। यह अक्षयकुमारके मरनेके बाद राजपुरुषोंने रावणको कहा है। 'धावहु मर्कट विकट बरूथा' (लङ्काकाण्डके १ दोहेकी चौपाई ५) में भी प्रयोग मिलता है।

७ वानरः—'वानर' शब्द जो बन्दरका ७वां प्रसिद्ध पर्यायवाचक है, रामायणमें स्थान-स्थान पर मिलता है। 'हरयो वानर श्रेष्ठं परिवार्योपतस्थिरे' (किष्कि. २।८) 'अहं सुग्रीवसचिवो हनूमान नाम वानरः' (३४।२८) यह आगन्तुक श्रीरामके आगे हनुमानने अपना परिचय दिया है। वानर कामरूप (इच्छानुकूल किसी भी रूपके बनानेकी शक्ति वाले) होनेसे मनुष्यका आकार भी धारण कर लेते थे; तभी हनुमान्ने ब्राह्मण-मनुष्यका रूप धारण कर लिया, जिसे श्रीवाल्मीकिने कहा है—'कपिरूपं परित्यज्य ...भिक्षुरूपं ततो भेजे' (किष्कि. ३।२) तभी गो.तुल.के मानसमें श्रीरामने उसे 'विप्र' कहा है। ब्राह्मण-मनुष्य समझनेसे श्रीरामने (कि. ३।२८-२९ में) उसे 'वेद-वेदाङ्गोंका पण्डित' कहा है।

(ख) उस समय कामरूप होनेसे हनुमान्ने राम-लक्ष्मणका परिचय पानेकेलिए बन्दरकी आकृति हटाकर ब्राह्मण-मनुष्य की

आकृति कर रखी थी, तब उसमें प्रतिपक्षीका यह कहना कि—"(१) यदि हनुमानजीकी आकृति बन्दरोंजैसी थी, तो ब्राह्मणका भिक्षुक-जैसे वस्त्र पहन लेनेसे वह आकृति कभी छुप नहीं सकती। फिर रामजीने आकार-प्रकारसे उसे ब्राह्मण कैसे समझा ? (२) यदि मनुष्यकी आकृति हनुमानकी नहीं थी, तो श्रीरामसे यह कहनेकी आवश्यकता क्यों हुई कि—'मैं हनुमान नाम वानर हूँ' (हनुमानादि वानर. पृ. १०२-१०३) यह आक्षेप कट गया. और व्यर्थ भी सिद्ध होगया, तभी तो हनुमान्-द्वारा राम-लक्ष्मणका परिचय प्राप्त होजानेपर फिर आगे 'भिक्षुरूपं परित्यज्य वानरं रूपमास्थितः' (कि. ४।३४) उस भिक्षु-मनुष्यका रूप छोड़कर हनुमान्का अपना स्वाभाविक वानररूप धारण कर लेना लिखा है। केवल वस्त्र पहरनेके भेदसे बन्दरकी ब्राह्मणता नहीं जानी जा सकती थी। न यह हम कहते हैं, न ही रामायण कहती है; यह तो वादीका लटका है, वहाँ वैसा वेष करना नहीं लिखा, किन्तु सारा रूप करना लिखा है। भिक्षुका भी रूप तथा वानरका भी रूप करना रामायणमें लिखा है, वेष नहीं। इससे वादीके सभी तर्क खण्डित होगये। हनुमान् आदिकी वानररूपता सिद्ध होगई।

(ग) जो कि कहा जाता है कि—'यदि बन्दरको भी श्रीराम पहचान न सके; तो श्रीरामकी सर्वज्ञतापर दोष आता है' यह प्रतिपक्षीकी बात तो व्यर्थ है। श्रीराम तो वास्तविकता जानते हुए भी सर्वत्र अनजान-से बनकर लीलामात्र कर रहे थे। जैसे कि

बाल्मी.रा.में रामावतार धारण करते हुए विष्णु-भगवानकेलिए 'जानन्नपि' (जानते हुए भी) कहा है—'ततो नारायणो विष्णु-र्नियुक्तः सुरसत्तमैः। जानन्नपि सुरान् एवं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत्। उपायः को वधे तस्य' इत्यादि (१।१६।१-२-३) देवीभागवतमें भी कहा है—'सर्वज्ञोपि हृतां मत्वा रावणेन दुरात्मना' (४।२०।५०) अज्ञवद् विचचारासौ पश्यमानो वने-वने। जानकीं न विवेदाथ रावणेन हृतां बलात्' (४।२५।१२) यहां स्पष्ट कर दिया गया है कि श्रीराम सर्वज्ञ होते हुए भी अज्ञताका नाटक खेल रहे थे। जैसे कि अन्यत्र कहा है—'तथापि मानुष देहमाश्रितः परमेश्वरः। कृतवान् मानुषान् भावान्' (५।१।१३) मानुषं जन्म संप्राप्य गुणाः सर्वेऽपि मानुषाः' (४।२५।७) (घ) तब प्रतिपक्षीका यह लिखना कि-'बन्दर ब्राह्मणोंवाला वेष बनाकर जावे, तो उसे 'कपिराजाय नमो नमः' कहते, यह व्यर्थ है। ब्राह्मणोंवाला वेष नहीं; किन्तु रूप भी ब्राह्मण-मनुष्यवाला कर रखा था। उस समय पूंछ आदि कुछ भी वानरत्वका लिङ्ग नहीं रखा गया। अणिमा आदि आठ ऐश्वर्योंको स्वतःसिद्ध रखनेवाले देवताओंके अवतार वानरोंमें ऐसा करना असम्भव भी नहीं; क्योंकि-वे देवावतार एवं कामरूप थे; उस समय मनुष्याकृति ब्राह्मण बनकर गये थे; अन्य तो सैकड़ों स्थानोंमें उन्हें 'कपि' कहा ही है। (ङ) श्रीरामकेलिए एक व्यवहार करना चाहिये था, 'मनस्यन्यद् वचस्यन्यद्' वाला व्यवहार नहीं" यह वादीका कहना भी गलत है। नाटकमें स्त्रीपात्र बने हुए भी पुरुषको अपना पुरुषपन प्रकट नहीं करना

पड़ता। इसीका नाम 'लोकलीलावत्ता' होता है। तभी तो वहाँ हनुमान्का 'भिन्तुरूपं परित्यज्य वानरं रूपमास्थितः। पृष्ठमारोप्य तौ वीरौ जगाम कपिकुञ्जरः' (कि. ४।३४) रामका पता लग जानेसे मनुष्यभिन्तुका वेष नहीं, किन्तु रूप छोड़कर फिर हनुमान्का अपना बन्दरवाला वेष भी नहीं, किन्तु बन्दरवाला रूप करके राम-लक्ष्मणको अपने कन्धेपर उठा ले जाना कहा है, पर प्रतिपक्षी इन पद्योंको छिपा दिया करते हैं, क्योंकि-इनसे उनका पक्ष खण्डित होता है।

'वानरोऽहं महाभागे ! दूतो रामस्य धीमतः' (सुन्दर. ३६।२) यहाँ भी सीताको हनुमान् अपनेको रामका दूत 'वानर' कह रहा है। 'सत्यं राक्षस ! राजेन्द्र ! शृणुष्व वचनं मम। रामदासस्य दूतस्य वानरस्य विशेषतः' (५।५१।३८) यहाँपर भी रावणको अपना वानर होना बताया जा रहा है। इसपर रामाभिराम (तिलक) टीकाने लिखा है—'स्वस्य नर-रक्षोऽतिरिक्त-जात्यन्तरत्वेन अपक्षपातो न्याय्य-वक्तृत्वं च सूचितम्' अर्थात् मैं न मनुष्य हूँ, न राक्षस, किन्तु इनसे भिन्न जातिवाला वानर हूँ; अतः मेरा वचन निष्पक्ष होगा। यहां भी हनुमान्की वानर होनेकी स्पष्टता है।

८ कीशः—'कीश' शब्द वाल्मी. में नहीं मिला। इससे वाल्मी. रा.की प्राचीनता सिद्ध हो रही है। यह शब्द कदाचित् पीछे चालू हुआ हो। कोषकार सामयिक शब्दोंका भी प्रयोग कर दिया करते हैं। इस शब्दकी व्युत्पत्ति है-'कः-वायुः, तस्य

अयमिति किः ('अच इः' (पा. ४।१।६५) स किः-हनुमान् ईशो-ऽस्य स कीशः-वानरः'। हनुमान्के पक्षमें इसकी व्युत्पत्ति यह होगी-'की इति शब्दमीष्टे कीशः' (मूलविभुजादित्वात् कः)। वाल्मी.रा.के भाष्यकार गो. तुलसीदासने 'कहु लंकेस कवन तैं कीसा' यहाँ 'कीश' शब्दका प्रयोग किया है—रावण अङ्गदको कहता है-हे कीश-बन्दर ! तू कौन है, अपना परिचय दे।

९ वनौकस्—'त्वद्गतानि च सर्वेषां जीवितानि वनौकसाम्' (किष्कि. ६७।३५) 'वनौकसा (हनूमता)' (सुन्दर. ३२।१४) इत्यादि स्थलोंमें 'वनौकस्' शब्दका श्रीवाल्मीकिने प्रयोग किया है, जो बन्दरोंकेलिए योगरूढ है'। 'स्नेहादरण्यौकसः' शाकुन्तलमें कण्वमुनिने अपनेको 'अरण्यौकाः' कहा है, पर वे मनुष्य होनेसे 'वानर' न तो कभी कहे गये, न माने गये। इसलिए रामायणमें वानर बन्दर ही थे, मनुष्य नहीं।

१० हरिः—'हरिश्रेष्ठ !' (सुन्दर. १।११०) (किष्कि. ४४।१३) 'हरिश्रेष्ठः' (सुग्रीवः) (किष्कि. ६७।३५) इत्यादि स्थलोंमें हनुमान् आदिकेलिए 'हरि' इस बन्दरके प्रसिद्ध दशम पर्यायवाचक 'हरि' शब्दका प्रयोग किया गया है।

(६) इस प्रकार जब हनूमानादि सिंहादिवर्गस्थित वानरपशु जातिके दस पर्यायवाचकोंसे बार-बार बुलाये गये हैं, तब स्पष्टतया वे वानर (बन्दर) सिद्ध हुए। 'वा-किञ्चिद् नरो वानरः' यह शब्द श्रीरामादि नरोंकेलिए कहीं भी नहीं आया; वनवासी-मनुष्योंकेलिए भी कभी नहीं आता; क्योंकि-वे 'किञ्चिद् नर'

न होकर 'खरे-खासे नर' होते हैं। पर बन्दरोंको तो 'कुछ मनुष्य' अर्थात् मनुष्य-सदृश होनेसे 'वानर' कहना ठीक ही है। इन दस नामों वाली मनुष्य-जाति तो चाहे वह वनवासी क्यों न हो, आकृति-व्यङ्ग्या न होनेसे 'आकाशका फूल' है, कछवी-का दूध है, खरगोशका सींग है, वालूकी दीवार है, कछवेका रोम है, कौवेका दाँत है, वालूका तेल है, साँपका कान है, बाँझका लड़का है, गन्धर्वोंका नगर है, मृगतृष्णाका पानी' है। राम सैनिकोंकी वानररूपतामें रामायणमें इतने प्रमाण हैं, जिन्हें हमने अपनी रामायणमें चिह्नित कर रखा है, यदि हम उन सबका संग्रह करें; तो 'श्रीसनातनधर्मालोक'का एक बड़ा पुष्प उन्हींसे भर जाय, और उन्हें मनुष्य सिद्ध करना चाहते हुए वादियोंको 'शतचन्द्रं नभस्तलम्' दीखने लगे। पर हम स्थाना-भाववश 'स्थालीपुलाक' न्यायसे थोड़े प्रमाणोंको दे रहे हैं। 'आलोक' पाठक सावधानतासे उनका मनन करें।

'हम जो कहा यह कपि नहिं कोई। वानररूप धरे सुर कोई' (मानस. सुन्दर. २५ दोहेके बाद) इसमें भी उनका मनुष्य-वेष न बताकर वानररूप कहा है। तब 'वनवासी होनेसे वे वानर थे' यह प्रतिपक्षियोंकी बात उनकी अपनी कपोलकल्पनासे अधिक मूल्य नहीं रखती। यह उनका नया, परन्तु जङ्ग खाया हुआ इसीलिए निकम्मा यन्त्र है। 'वनवासी' होनेसे उन्हें 'वानर' कहा जावे, तो 'तौ शोणिताक्तौ युध्येतां वानरौ वनचारिणौ' (वाल्मी. ४।१६।३०) यहाँ सुग्रीव एवं बालीकेलिए 'वानर' और

'वनचारी' शब्दोंमें पुनरुक्ति दोष अनिवार्य होता। अलग ग्रहण करनेसे वानर-यह पशुजातिमें रूढ शब्द सिद्ध है।

(७) अब 'आलोक' पाठकगण अन्य भेदक शब्द भी देखें। 'एवमेकान्तसंपृक्तौ ततस्तौ नर-वानरौ' (कि. ७।२४) इस प्रकार बहुत स्थलोंमें श्रीरामको 'नर' और सुग्रीवको 'वानर' कहा गया है। दोनों वनवासी थे। यदि श्रीवाल्मीकिमुनिको यह दोनों, प्रतिपक्षियोंके अनुसार मनुष्य इष्ट होते; तो नर-वानर यह भेद करनेकी कोई आवश्यकता नहीं थी। दोनोंके वनवासी होनेसे (जैसेकि रामकेलिए भी 'वनगोचरः' (६।११३।६)शब्द आया है) समान ही 'वानर' शब्दका प्रयोग हो जाता, वा दोनोंको 'नर' होनेसे उन्हें 'नर' कहा जाता। एक को मनुष्य तथा दूसरेको उसके मुकाबलमें 'वनवासी' नहीं कह सकते, वानर ही कहना न्याय्य एवं सङ्गत हो सकता है। क्योंकि जातिकी प्रतिद्वन्द्वितामें जातिशब्द ही रखा जाता है। 'वनवासी' जातिशब्द नहीं। इससे अत्यन्त ही स्पष्ट है कि-श्रीवाल्मीकिको वानर नरोंसे भिन्न योनिवाले ही इष्ट थे। नहीं तो वे वनवासी होनेसे रामको भी 'नर' न कहकर 'वानर' ही कहते; पर नहीं कहा गया; अतः प्रतिपक्षियोंकी एतद्विषयक युक्ति निर्मूल है।

(८) 'तौ आसीनौ ततो दृष्ट्वा हनूमानपि लक्ष्मणम्। शालशाखां समुत्पाट्य विनीतमुपवेशयत्' (४।८।१४) यहाँ पर शालवृक्षकी शाखा उखाड़कर बैठानेसे हनूमानकी बन्दरोंवाली प्रकृति स्पष्ट होनेसे उनकी वानरता प्रत्यक्ष है। नहीं तो यदि वे मनुष्य होते;

तो कुर्सी वा चौकी रखते ।

(९) 'संस्तूयमानो हनुमान् व्यवर्धत महाबलः । समाविध्य च लाङ्गूलं हर्षाद् बलमुपेयिवान्' (कि. ६७।४) यहाँ हनूमान्का पूँछ फटकारना भी दिखलाया गया है; क्या मनुष्यकी पूँछ भी हुआ करती है ?। स्पष्ट है–उसे बन्दर बताया गया है। श्रीसातवलेकरजी जो कि–इस पुच्छके विषयमें नई कल्पना किया करते हैं; उसपर अन्तमें विचार होगा। इसी प्रकार 'तस्य लाङ्गूलमाविद्धमतिवेगस्य पृष्ठतः' (सुन्दर. १।३२,१।५९) स्फोटयत्यतिसंरब्धो लाङ्गूलं च पुनः पुनः । यस्य लाङ्गूलशब्देन स्वनन्ति प्रदिशो दश। एष···युवराजोऽङ्गदो नाम' (युद्ध. २६।१६-१७) यह सारण राक्षस अङ्गद-वानरका वर्णन कर रहा है। 'यस्य वाला बहुव्यामा दीर्घ-लाङ्गूलमाश्रिताः' (२७) यहाँपर एक वानरके पूँछके बाल बताये गये हैं। इसी प्रकार २७।२ आदि बहुत स्थलोंपर वानरोंकी पूँछ स्पष्ट है। 'हनूमानपि तेजस्वी···क्षितौ आविध्य लाङ्गूलं' (५।४२।३०) 'हनूमान् मारुतात्मजः। पुच्छम् आस्फोटयामास (३१) 'ननाद सुमहानादं लांगूलं चाप्यकम्पयत्' (५।५७।१७) इत्यादि रामायणीय पद्योंमें हनुमान् आदिके पूँछ फटकारनेसे उनका बानरत्व स्पष्ट है।

(१०) कई लोग कदाचित् सन्देह करें कि—हनुमान्की पूँछ शायद वास्तविक न होकर आलङ्कारिक हो, परन्तु वे अपना सन्देह दूर करनेकेलिए वाल्मी. रा.में वर्णित पूंछकी घटना देखें, जिससे लङ्कादाह हुआ। 'कपीनां किल लांगूलमिष्टं भवति

भूषणम्। तदस्य दीप्यतां शीघ्रं तेन दग्धेन गच्छतु' (सु. ५३।३) यह हनुमानकेलिए रावणने कहा था कि—बन्दरोंको अपनी पूंछ बहुत प्यारी एवं उनकी भूषणस्वरूप होती है। इसकी उस पूंछको जला दो, तब राक्षसोंने भी वैसा किया। इससे हनुमान्की पूंछका वर्णन स्वाभाविक है, कृत्रिम वा आलङ्कारिक नहीं। किन्हीं भी वनवासी मनुष्योंका न तो पूछ होती है, और न उनकी इष्ट भूषण ही होती है। अब पाठकगण राक्षसों-द्वारा हनुमान्की पूंछका जलाना देखें—

(ख) 'तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राक्षसाः कोपकर्कशाः। वेष्टन्ते तस्य लांगूलं जीर्णैः कार्पासिकैः पटैः' (५३।६) ततस्तस्य वचः श्रुत्वा मम पुच्छं समन्ततः। वेष्टितं शणवल्कैश्च पटैः कार्पासिकैस्तथा' (५।५८।११२) यहाँ पर हनुमान् अपने पुच्छ-दहनका वृत्तान्त सुना रहा है। 'संवेष्ट्यमाने लाङ्गूले व्यवर्धत महाकपिः' (५।३७) (जब पूंछमें पुराने चीथड़े बांधे जा रहे थे, तब हनुमान्ने अपने-आपको बड़ा बना लिया।) लांगूलेन प्रदीप्तेन राक्षसान् तान् अताडयन्' (८) दीप्यमाने ततस्तस्य लाङ्गूलाग्रे हनूमतः' (२२) हनूमज्जनकश्चैव पुच्छानलयुतोऽनिलः (वायुः) (२८) यहां पर हनुमानका पिता वायु बतलाया गया है; इससे जो कि वादी लोग उसे मनुष्य बतानेकी चेष्टा करते हैं; उनका खण्डन हो गया; उसमें कोई सङ्गति भी नहीं लगती। इसी प्रकार 'अञ्जलिं प्राङ्मुखं कुर्वन् पवनायात्मयोनये' (५।१।६) यहां भी पवनको हनुमान्का योनि (कारण) बताया गया है; भिन्न-भिन्न पर्यायवाचक (अनिल,

पवन, वायु आदि) उसे वायु देवता बता रहे हैं। अतः प्रतिपक्षियोंका पक्ष असंगत हो जाता है; वहां क्या उसका मनुष्य पिता बैठा हुआ था ?

'दह्यमाने च लाङ्गूले चिन्तयामास वानरः' (५३।२९) शिशिरस्येव सम्पातो लांगूलाग्रे प्रतिष्ठितः (३०) यो ह्ययं मम लांगूले दीप्यते हव्यवाहनः' (५४।५) प्रदीप्तमग्निमुत्सृज्य लांगूलाग्रे प्रतिष्ठितम्। ननाद हनुमान् वीरो' (५४।२०) इहागतो वानररूपधारी रक्षोपसंहारकरः प्रकोपः' (३६) लङ्कां समस्तां सम्पीड्य, लाङ्गूलाग्नि महाकपिः। निर्वापयामास तदा समुद्रे हरिपुङ्गवः (५४।४९) न मे दहति लांगूलं कथमार्यां प्रधक्ष्यति (५५।२६) इस प्रकरणमें पूंछसे प्यार करनेसे हनुमान स्पष्ट वानर सिद्ध होते हैं, नर नहीं। नरकी पूंछ नहीं होती। राक्षसों द्वारा हनूमान्को वानररूपधारी काल बताया गया है। यहाँ पर 'वानरवेष' नहीं दिखलाया गया है, किन्तु वानर-रूप दिखलाया गया है। यहाँ स्वाभाविक वर्णन है, कृत्रिम नहीं। वनवासी मनुष्योंकी पूंछ भी नहीं होती, और पूंछ उनका इष्ट भूषण भी नहीं होती। यह पुच्छलीला स्पष्टतया हनुमान्की वानरताकी ही परिचायक है।

(१२) केवल रामायणमें ही हनुमान्को वानर वा पुच्छयुक्त नहीं बताया गया है; बल्कि महाभारतमें भी कहा गया है—'विज्ञाय हनुमान् कपिः' (वनपर्व १४६।६५) महाकायो हनूमान् नाम वानर.' (६९) आस्फोटयच्च लाङ्गूलम् इन्द्राशनिसमस्वनम्' (७०) यहां हनुमानका पूंछ फटकारना लिखा है। 'तस्य लाङ्गल-

निनदं' (७१) लाङ्गूलास्फोटशब्दाच्च' (७२) स लाङ्गूलरवः' (७३) यहाँ पूंछ फटकारने का शब्द लिखा गया है। 'लाङ्गूलेनोर्ध्वगामिना ध्वजेनेव विराजितम्' (७८) यहाँ पर पूंछका ऊपर उठाना लिखा है, जो गाय-भैंस आदिकी भांति बन्दरोंका भी स्वाभाविक होता है, मनुष्योंका कभी नहीं हो सकता।

हनूमानुवाच—'वानरोऽहम्' (१४७।५) 'रामायणेति विख्यातः श्रीमान् वानरपुङ्गवः' (११) प्रसीद नास्ति मे शक्तिरुत्थातुं जरयाऽनघ! ममानुकम्पया त्वेतत् पुच्छमुत्सार्य गम्यताम्' (१६) हनूमान् भीमसेनको कहता है कि मेरी पूंछ हटाकर चले जाओ। रामायणकालके हनुमान् चिरजीवी होनेसे महाभारतकालमें भी दीख रहे हैं। 'पुच्छं प्रगृह्य तरसा' (१८) परन्तु महाबलवान् भी भीमसेन हनुमान्की पूंछको न हिला सका। 'नाशकच्चालयितुं भीमः पुच्छं महाकपेः [हनूमतः]' (१६) यत्नवानपि तु श्रीमान् लाङ्गूलोद्धरणोद्धुरः। कपेः पार्श्वगतो भीमस्तस्थौ व्रीडानताननः' (१४८।११) इससे भीमसेन लज्जित हो गया। इन महाभारतके पद्योंमें हनुमान्की पूंछका वर्णन होनेसे और कपि, वानर आदि कहनेसे हनुमान् बन्दर ही थे, जंगली मनुष्य नहीं; यह सिद्ध हो गया।

(ख) यदि प्रतिपक्षी डार्विनके अनुयायी हों; उनके मतमें मनुष्योंका मूल यद्यपि वानर हो सकते हैं; तथापि वर्तमान मनुष्य उनके मतमें भी पुच्छ-रहित हैं, परन्तु रामायण-महाभारतमें उनकी पुच्छका वर्णन होनेसे वे वर्तमान-मनुष्य सिद्ध

न हुए। कई मद्रासी अब्राह्मण कहते हैं कि—यह वानर द्रविड़ लोग वा अनार्य थे, उनके उपहासकेलिए उनकी पंछ रामायणादि आर्यसाहित्यमें जोड़ दी गई है; पर यह ठीक नहीं। यदि श्री-वाल्मीकिको हनुमानादिकी अनार्यता सिद्ध करना वा उनका उपहास करना इष्ट होता, तो उन्हें रामायणके श्रेष्ठ पात्रोंमें स्थान न दिया जाता; और उन्हें 'आर्य' (कि. २५।३०) न कहा जाता। वस्तुतः शङ्काकर्ताओंके मस्तिष्कोंको पाश्चात्य वा अनार्य लोगोंने खरीद रखा है, जिससे स्थान-स्थानपर उन्हें विपरीत शङ्काएँ घेरे रहती हैं।

(१२) स्वा.द.जीसे सम्मानित शुक्रनीतिमें भी हनुमान-द्वारा लङ्काकी अशोक-वाटिकाके तोड़नेके सङ्केतमें हनुमानको वानर सिद्ध किया है—'रावणस्य च भीष्मादेर्वनभङ्गे च गोग्रहे। प्राति-कूल्यं तु विज्ञातमेकस्माद् वानराद्, नरान्' (१।५६) यहाँ वानर-से रावणके वन (अशोकवाटिका) के भङ्गकी कथासे हनूमानका सङ्केत है, क्योंकि—उसीसे उसका सम्बन्ध है। और भीष्मका विराटके गोग्रहणमें 'नर' अर्जुनसे पराभवका वृत्त सङ्केतित है। इससे हनुमानका नरसे भिन्न वानर होना स्पष्ट सिद्ध होगया।

(१३) निकुञ्च्य कर्णौ हनुमान उत्पतिष्यन् महाबलः' (सुं. १।३६) यहाँ हनुमानका उछलनेके समय कान सिकोड़ना उसका वानरत्व बता रहा है, मनुष्यमें उछलनेके समय कान सिकोड़ना असम्भव है। प्रतिपक्षियोंके पक्षकी रीढ़की हड्डी इससे टूट गई। सौ वर्ष लगाकर भी वे कभी मनुष्योंका कान सिकोड़कर

उछलना सिद्ध नहीं कर सकते। जब ऐसा है; तो वे किस मुंहसे हनुमानादिको मनुष्य सिद्ध करनेकी निर्मल चेष्टा किया करते हैं।

ऐसे प्रमाणोंको तो वे छिपा दिया करते हैं। बाहरी बातें कि-'अजी, उनके मकान थे; वे वस्त्र पहनते थे, उनके पलंग थे, सोनेके गहने पहरते थे'-यह बताकर वे उन्हें मनुष्य सिद्ध करनेकी असफल चेष्टाएँ किया करते हैं। परन्तु यह व्यर्थ है; स्पष्ट वानरादिकी प्रकृति दिखलानेसे; और स्पष्ट शब्दोंमें वानर कहनेसे उनका पक्ष गिर जाता है। हाँ, यह अवश्य है कि-वे प्राकृत (साधारण) वानर नहीं थे, किन्तु अप्राकृत (विशेष) वानर थे। देवयोनिसे सीधे वानरयोनिमें आनेसे वे रामायणानुसार विशेष वानर थे। इसलिए जब वे वानर कुम्भकर्णको देखकर भाग रहे थे; तब अङ्गदने उन्हें कहा था कि-'आत्मनस्तानि (अप्राकृतानि) विस्मृत्य वीर्याणि-अभिजनानि च। क्व गच्छत भयत्रस्ताः प्राकृता वानरा यथा' (६।६६।५) अर्थात् तुम लोग दिव्य वानर भी प्राकृत (साधारण) बन्दरोंकी भांति क्यों भाग रहे हो; अपने उन अप्राकृत बल तथा अभिजन-मूलजातिको क्यों भूल गये हो? इससे रामायणीय वानरोंके वानररूप होनेपर भी रामायणको उनकी अप्राकृत वानरता ही सिद्धान्तरूपेण इष्ट है। यह वादी या आक्षेप्ता याद रखें। वे वाल्मी.रा.के अनुसार देवयोनिसे सीधे वानरयोनिमें आये थे; अतएव अप्राकृततावश उनके मकान, राज्य, मुकुट आदि भी हो सकते थे;

इस विषयपर अन्तमें प्रकाश डाला जावेगा। इस वास्तविकताका ज्ञान न होनेसे. या उसे छिपा देनेसे वादी जनताके भ्रमका कारण बनते हैं।

(१४) 'चक्रुः किलकिलामन्ये प्रतिगर्जन्ति चापरे। केचिद् उच्छ्रितलांगूला प्रहृष्टाः कपिकुञ्जराः। आयताञ्चित - दीर्घाणि लाङ्गूलानि प्रविव्यधुः' (५।५७।४२, ४३) यहाँपर रामायणीय बन्दरोंका किलकारी मारना, तथा पूंछ ऊँचे उठाकर खुश होना, पूंछ फटकारना ऐसा जो वर्णन पाया जाता है; वह मनुष्योंमें कभी नहीं हो सकता। कदाचित् वनवासी मनुष्य बनावटी पूंछ लगा भी लें; तथापि वह उनकी पूंछ स्वभावसे उठाई नहीं जा सकती; या स्वाभाविकतया नीचे नहीं की जा सकती; जैसेकि बन्दर, गाय-भैंस, घोड़ा आदि करते हैं। परन्तु यहाँ स्वाभाविकतासे पूंछ उठाना कहा गया है; अतः यहाँ बन्दर भी स्वाभाविक विवक्षित हैं, बनावटी नहीं। और फिर यहाँ बन्दरोंकी किलकारी भी उनके स्वाभाविक वानरत्वको बता रही है।

(१५) लाङ्गूलचक्रो हनुमान् शुक्लदंष्ट्रः' (५।१।६०) यहाँ हनुमानको सुफेद दाढ़ोंवाला कहा है। मनुष्यकेलिए 'दन्त' शब्दका प्रयाग होता है, दंष्ट्राओंका नहीं। यह वानरोंकेलिए प्रयुक्त होता है; और पूँछका चक्र भी उनके वानरत्वका परिचायक है। जोकि प्रतिपक्षी कहते हैं कि-'रामायणमें हमको एक स्थान पर भी वानरियोंकी पूँछका उल्लेख नहीं मिला'। खेद ! जब

हनुमान्-आदिकी पूँछका वर्णन रामायणमें स्पष्ट मिलता है, उसे तो प्रतिपक्षी छिपा लेते हैं, अब वानरियोंकी पूँछ ढूँढ़ने जा रहे हैं। उन बन्दरियोंका पूरा वर्णन आया ही कहाँ है? उनका युद्धमें जाना ही कहाँ कहा है? उनकी कूद-फांद, वृक्षोंका तोड़ना आदि कहा ही कहाँ है? जब-कभी कूद-फाँद वा लड़ाईका वर्णन आता है, तभी प्रसङ्गानुसार पूँछ भी वर्णित की जाती है, पर इन वानरियोंका ऐसा वर्णन आया ही नहीं है; तब यदि उनका उन पुरुषों-बन्दरों जैसा वर्णन नहीं आया; तब उनकी पूँछ भी कैसे वर्णित होती?

अथवा कामरूप होनेसे वानरियोंने पूँछ न रखी हो; तो यह भी सम्भव हो सकता है। हाथियोंके बाहरी दाँत होते हैं; कई हथनियोंके नहीं होते। मोर-मोरनीका बड़ा भेद कलगी आदिका स्पष्ट रहा करता है, इस प्रकार उन देवांश वानर वा वानरियोंका भेद होनेसे वानर वा वानरियोंका पूँछ होने न होनेका भेद सम्भव है। अतः स्त्री-पुरुषका यदि वानरोंमें कुछ पूँछ आदिका भेद कहा है; उसमें हमारे पक्षकी कुछ भी हानि नहीं?

जोकि पूछा जाता है कि—'वानर जिन देवों, ऋषियों, गन्धर्वों की सन्तान थे, उन देवोंकी पूँछ थी, या नहीं? यदि नहीं; तब उनकी सन्तानकी पूछ भी मिथ्या ही है' अब पाठक इसपर देखें। 'हिन्दुस्तान' पत्रके १३-७-६० के अङ्कमें एक गोरखा महिलाकी पूँछवाली लड़की पैदा होनेका वृत्त छपा था। उड़ीसाके

गञ्जाम जिलेमें एक पूँछवाली लड़की पैदा हुई थी, उसकी पूँछ काटनेकेलिए उसे बैरामपुरके हस्पतालमें ले जाया गया था' (संस्कृतम्, अयोध्या १६।४।४७)। न तो इन सन्तानोंकी मांकी पूँछ थी, न बापकी; पर सन्तानोंकी थी; तब इससे प्रतिपक्षीकी युक्ति कट गई। 'वीर अर्जुन' (१६-११-६०) में एक चार सींगवाले बच्चेके पैदा होनेका समाचार था। इस प्रकार उसीके २-७-५४ के अङ्कमें भी सींगवाले एक लड़केकी जो बन्दर जैसे रूपवाला था-उत्पत्ति दिखलाई गई थी, पर माँ-बापके सींग नहीं थे, न बन्दरोंवाली आकृति थी; इससे वादीका पक्ष कट गया। रामायणके हनुमानादि पात्र वानर-रूपमें क्यों हुए, इस विषयमें इस निबन्धके अन्तमें प्रकाश डाला जायगा।

(१६) 'आस्फोटयामास चुचुम्ब पुच्छं, ननन्द, चिक्रीड, जगौ, जगाम। स्तम्भान् अरोहद्, निपपात भूमौ, निदर्शयन् स्वां प्रकृतिं कपीनाम्' (सुन्दर. १०।५४) इस पद्यमें पूँछ फटकारने एवं चूमने, खम्भोंपर कूदकर चढ़ने, कूदने-फांदने, नीचे गिरने आदि क्रीडासे हनुमान्की वानरता दिखाई गई है। यहां यदि 'कपीनां प्रकृतिं निदर्शयन्' होता, तब भी कथञ्चित् हनुमानादिको मनुष्य कहा जा सकता; पर 'स्वां कपीनां प्रकृतिं निदर्शयन्' यहां 'स्वां (अपनी) कपीनां प्रकृतिं' शब्दसे उनका वानर होना अतीव स्पष्ट है।

रामाभिरामने यहाँ लिखा है—'आस्फोटपुच्छचुम्बनादि-र्जातिधर्मः। सर्वा अपि एताः चेष्टा उपांशु इति बोध्यम्। एवं-चेष्टायां हेतुः—स्वां कपीनां प्रकृतिं निदर्शयन्निति' अर्थात् यह सब

बन्दर-जातिके स्वाभाविक धर्म हैं, वही हनुमान कर रहा था। वनवासी मनुष्योंमें यह बात स्वाभाविकतासे नहीं होती। हाँ, यदि शङ्ककोंको यहां वनमानुष विवक्षित हों; तब वे भी पशु ही होते हैं, वे मनुष्य कैसे हो सकते हैं? पहले श्लोकोंमें पूँछका पर्यायवाचक 'लांगूल' शब्द था; पर यहां साक्षात् 'पुच्छ' शब्द है। क्या वादियोंने कहीं क्षत्रिय वा वनवासी मनुष्योंकी पूँछ भी देखी है। इस पद्यमें वानरोंकी स्वभावोक्ति दिखलाई गई है। यह उस समयका वर्णन है, जब हनुमान्ने मन्दोदरीको सीता समझा; और प्रसन्न होकर उक्त क्रीड़ा की। मनुष्योंमें ऐसी स्वाभाविकता कभी नहीं होती। तब हनुमानादिको मनुष्य बताना 'वालुकाभित्ति' है।

(१७) अन्य भेदक श्लोक देखिये—लङ्कामें हनुमान सीताके प्रथम मिलनके समय सोचता है—'अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः। वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्' (५।३०।१७)। यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्। रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति' (१८) (यदि मैं वानर होकर मानुषी वाणी संस्कृतको ब्राह्मणकी तरह बोलने लग जाऊँगा, तो सीता डर जायगी) यदि हनुमान् सचमुच मनुष्य होते; तब मानुषी वाणी संस्कृत बोलनेसे उससे सीता डरती ही क्यों? हाँ, मनुष्यसे भिन्न वन्दर होनेसे फिर मानुषी भाषा संस्कृत होनेसे सीताको उससे डर हो सकता था कि—रावण ही कदाचित् ऐसा रूप बनाकर आया है। इसलिए हनुमान् मनुष्यसे

भिन्न वानर-योनिवाले सिद्ध हो गये।

यहाँपर प्रतिपक्षी लोग 'यदि वाचं प्रदास्यामि' यह १८वां पद्य तो देते हैं, पर 'अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः' इस १७वें पद्यकी—जिससे हनुमानकी वानरता स्पष्ट प्रकट होती है, और सीताको उसी वानरका संस्कृत बोलनेसे डर जो उत्पन्न हो जाता है, वादी चोरी कर लेते हैं. जनताके सामने नहीं आने देते। यह उनके पक्षकी दुर्बलताका प्रबल प्रमाण है। वैसे तो वे हमसे पूर्व उदाहृत किये तथा आगे बताये जानेवाले पद्योंको लोकदृष्टिमें रखते नहीं, फिर अनुसन्धानमें आलसी लोग यदि उनके पक्षके हामी बन जावें; यह सम्भव है, पर अनुसन्धान-दृष्टि बढ़ जाने पर वादियोंका पक्ष जनदृष्टिमें विध्वस्त हो जायगा।

(१८) अन्य स्पष्ट भेद देखिये—'सीता हनुमान्से पूछती है—'क्व ते रामेण संसर्गः कथं जानासि लक्ष्मणम्। वानराणां नराणां च कथमासीत् समागमः' (५।३५।२) (तेरा श्रीरामसे मेल कहां हुआ? नर और वानरोंका मेल कैसे हुआ? इससे स्पष्ट है कि हनुमानादि नरोंसे भिन्न योनिवाले वानर थे। यदि हनुमान् मनुष्य होते; तब सीताका यह प्रश्न असंगत था; क्योंकि-वादियोंके मतवाली क्षत्रिय वा वनवासी जाति भी तो नर होगी। अथवा वनवासी होनेसे इस समय राम भी वादियोंके अनुसार वानर कहे जाते; तब भेदक वाक्य कैसे? आजकलके दयानन्दी टीकाकार हनुमानादिकी मनुष्यता सिद्ध करनेकेलिए रामायणकी टीकामें सर्वत्र 'वानर'का 'वनवासी मनुष्य' अर्थ करते हैं, यह

सब वाल्मीकिसे विरुद्ध अकाण्ड-ताण्डव है। छलसे वे कब तक काम चलायेंगे? 'वानराणां नराणां च' में भेदक 'च' भी दोनोंके 'नर' होनेपर व्यर्थ होता। इससे हनुमानादिकी मनुष्ययोनिसे भिन्न वानर योनि स्पष्ट सिद्ध हुई। 'नरवानरौ' (४।७।२४)में द्विवचन भी दोनोंकी भिन्नताका साक्षी है।

(१६) अन्य देखिये—'स्वप्नो मयाऽयं विकृतोऽद्य दृष्टः, शाखामृगः शास्त्रगणैर्निषिद्धः। (५।३२।६) सीता कहती है कि—मुझे आज शास्त्रनिषिद्ध शाखामृग (बन्दर) का सपना आया है-(५।३४।२२), तब यहाँ हनुमान् स्पष्ट मनुष्य-भिन्न वानर सिद्ध हुए; क्योंकि—मनुष्यका स्वप्न शास्त्रनिषिद्ध नहीं। यह स्वप्न हनुमान्के विषयमें था। जागती हुई भी वह मूर्छामें स्वप्न समझ रही थी। यदि वह हनुमान् वानर न होता, किन्तु मनुष्य होता; तो सीता 'रूपान्तरमुपागम्य स एवायं हि रावणः' (५।३४।१) हनुमानके अन्य (वानर) रूपधारी रावणकी शङ्का न करती।

(२०) अब और देखिये—'तत्र तौ कीर्तिसम्पन्नौ हरीश्वर-नरेश्वरौ' (५।३५।३२) 'नर-वानर राजानौ स तु वायुसुतः कपिः' (६।३७।१) यहाँ पर सुग्रीवको बन्दरोंका तथा श्रीरामको मनुष्यों-का राजा कहा है। अन्य स्पष्ट पद्य देखिये—'मानुषो राघवो राजन्! सुग्रीवश्च हरीश्वरः' (५।५१।२७) यदि रामायणकारको नर-वानरोंकी समान ही योनि इष्ट होती; तो 'नरेश्वरौ' ही कहना पर्याप्त था; वा श्रीरामके भी वनवासी होनेसे दोनोंको 'वानरेश्वरौ' ही कहा जाता; परन्तु दोनोंको भिन्न-भिन्न कहनेसे

हनुमानादिकी मनुष्यसे भिन्न वानर-योनि सिद्ध हुई। इस प्रकारके भेदक पद्य रामायणमें बहुत मात्रामें मिलते हैं।

(२१) 'वयं वनचरा राम ! मृगाः (पशवः) मूलफलाशिनः। एषा प्रकृतिरस्माकं पुरुष (मनुष्य) स्त्वं नरेश्वर।' (४।१७।३०) यहाँ पर वाली वानर अपनेको पशु (बन्दर) तथा रामको मनुष्य कहकर दोनोंकी भिन्न योनि बता रहा है। तब नर-वानरोंकी भिन्नता सिद्ध हो ही गई। इसी प्रकार 'नहीयं हरिभिर्लङ्का प्राप्तुं शक्या कथञ्चन। देवैरपि सगन्धर्वैः किं पुनर्नर-वानरैः' (६।२०।१२) सुग्रीवके प्रति रावणके इस सन्देसेसे नरों और वानरोंका भेद स्पष्ट है। इस प्रकारके पद्य बहुत मात्रामें मिलते हैं।

(२२) 'मानुषं धारयन् रूपमात्मनः शिखरे स्थितः। दुष्कृतं कृतवान् कर्म त्वमिदं वानरोत्तम !' (५।१।१०४) यह पर्वत हनुमान् से कह रहा है कि-मनुष्यरूप धारण करके ऐ बन्दर ! तू ने यह बड़ा कठिन कार्य किया है। यदि हनुमान मनुष्य होते; तो उनको मनुष्यरूप धारण करनेकी क्या आवश्यकता थी ? वे तो तब स्वतः ही मनुष्य थे। इससे स्पष्टतया वे वानर थे; तभी वानरका पर्वतके अनुसार मनुष्यरूप धारण करना कठिन था; इसी कारण उसका, सम्बोधन 'वानरोत्तम' आया है।

यदि कहा जावे कि-वे नागरिक पहनावा नहीं पहरते थे; इसलिए 'वानर' कहे गये, यह भी व्यर्थ है; जब कि प्रतिपक्षी आर्य-पथिक इनका वस्त्र पहनना, भूषण पहनना, सिरपर मुकुट

रखना, छत्र और चामर रखना, चाँदी-सोनेके पलंग रखना, नगरमें रहना, पालकी पर चढ़ना, जूते पहनना आदि नागरिक पहरावा मानता है, तब उन्हें वानर क्यों कहा गया है? इससे स्पष्ट है कि—वे मनुष्य नहीं थे। हां, वे आजकलके प्राकृत वन्दर भी नहीं थे; किन्तु देवयोनिसे आये हुए विशेष शक्तिशाली, तथा मनुष्यों-जैसे व्यवहार करने वाले रूपमात्रमें वानर थे, जैसा कि प्रहस्तका हनुमान्‌को कहा हुआ वचन आगे उद्धृत किया जावेगा; और अन्तमें इसपर स्पष्टता भी की जाएगी।

यदि यह सन्देह हो कि—वानर होकर हनुमानादि मनुष्य-की वाणी कैसे बोल सके; तो इसपर जानना चाहिये कि—उक्त वचनमें पर्वतकी भी मनुष्यवाणी दिखलाई गई है; तब अप्राकृत (दिव्य) वानरमें यह असम्भव कैसे? वस्तुतः देवयोनिसे सीधा वानरयोनिमें आनेसे उनमें अपनी देववाणी (संस्कृत) विस्मृत नहीं हो सकती थी। यदि कोई नट स्त्रीवेष बनाकर आ जावे; तो क्या उसकी पुरुषोंवाली शक्ति वा वाणी नष्ट हो जावेगी? विशेष प्रकाश इसपर अन्तमें डाला जावेगा।

(२३) जब हनुमान्‌ने रामके आनेका समाचार भरतको सुनाया; तब भरतने उसे कहा—'कच्चिन्न खलु कापेयी सेव्यते चलचित्तता' (६।१२६।२३) यहाँ पर भरतने भी हनुमान्‌की वानर-प्रकृति चल-चित्तता दिखलाकर उसे बन्दर बताया है। 'अहो! शाखामृगत्वं ते व्यक्तमेव प्लवङ्गम! लघुचित्ततयाऽऽत्मानं न स्थापयसि यो मतौ' (४।२।१७) यहां पर रामको बाली समभ-

कर उससे डरे हुए सुग्रीवको हनुमान् 'बन्दर' बता रहा है। रावणने शुकको कहा था—'कच्चिन्नानेकचित्तानां तेषां त्वं वशमागतः' (६।२४।२६) कि—तुम चञ्चलचित्त वालों (बन्दरों) से तो कहीं नहीं पकड़े गये ? यहां स्वाभाविक प्रकृति बताकर रामके सैनिकोंको बन्दर बताया गया है। मनुष्योंमें ऐसी स्वाभाविक प्रकृति नहीं होती कि—उन्हें इस शब्दसे कहा जाय। प्रतिपक्षी कहां-कहां प्रक्षिप्तता मानेंगे ?

(२४) 'मत्कृते हरिभिर्वीरैर्वृतो दन्तनखायुधैः' (सुन्दर. ३५।२५) सीता कह रही है। 'ऋक्ष-वानर-शार्दूलैर्नखदंष्ट्रायुधैरपि। कराग्रै-श्चरणाग्रैश्च वानरैरुद्धतं रजः' (६।४।५६) कवि कह रहा है। 'ईदृ-ग्विधैस्तु हरिभिर्वृतो दन्तनखायुधैः' (५।४३।२४) यह हनुमानकी वानरोंकेलिए उक्ति है। इन पद्योंमें वानरोंको नखायुध तथा दंष्ट्रायुध और फिर उन्हें वीर कहा है। 'नखैस्तुदन्तो दशनैर्दशन्तः तलैश्च पादैश्च समापयन्तः। मदात् कपिं ते कपयः' (५।६१।२४)। मनुष्य युद्धमें किसीको नाखूनोंसे नोच दें, वा दाढ़ोंसे फाड़ दें; और फिर वीर कहें जावें, यह सम्भव नहीं हो सकता। इससे उनकी निन्दा ही हो सकती है, प्रशंसा नहीं। युद्धके अवसर पर नाखूनोंसे किसीको नोचने और दाढ़ोंसे फाड़नेसे मनुष्य वीर नहीं कहे जाते। परन्तु पूर्व कहे पद्यमें तथा 'नखदंष्ट्रायुधान् वीरान्...वानरान्' (५।३६।४६) यहांपर भी उन बन्दरोंको नखायुध, दंष्ट्रायुध कहकर वीर (बहादुर) बताया गया है। मनुष्यभिन्न वानरयोनि स्वीकार करनेपर तो उनका नख-दंष्ट्रायुधत्व स्वाभाविक

होनेसे इससे उनकी वीरता भी उपपन्न हो सकती है। उनकी इससे निन्दा नहीं हो जाती। तब उनकी वानरता सिद्ध हो ही गई।

(२५) 'हनूमन्! दूरमध्वानं कथं मां नेतुमिच्छसि। तदेव खलु ते मन्ये कपित्वं हरियूथप!' (सुन्दर. ३७।६) (सीता कह रही है, ऐ हनुमान्, तू मुझे दूर रास्तेमें उठाकर कैसे ले जाना चाहता है; वही अपना बन्दरपन दिखला रहे हो?) यहां रामाभिरामने लिखा है—'तदेव-दृश्यमानमेव'। यहां पर श्रीवाल्मीकिने हनुमान्‌की शक्तिसे अपरिचित श्रीसीताके मुखसे उपहासद्वारा हनूमान्‌का वास्तविक वानरत्व दिखलाया है।

(२६) यदि श्रीवाल्मीकिको वनवासी-मनुष्य होनेसे रामायणके बन्दरोंका वानरत्व इष्ट होता; तो 'तौ शोणिताक्तौ युध्येतां वानरौ वनचारिणौ' (४।१६।३०) इत्यादि बहुत स्थलोंमें युद्ध संलग्न वाली-सुग्रीव आदिकेलिए 'वनचारिणौ वानरौ' पर वादीके अनुसार पुनरुक्ति न की गई होती, आर्यपथिकने अपनी पुस्तक (पृ. १२७)में लिखा है कि—'वानर और वनचारी एक ही हैं'। पृथक्-पृथक् ग्रहणसे वानर स्पष्ट पशु-योनिविशेष सिद्ध होते हैं।

(२७) तलेनाभ्यहनत् कांश्चित् पादैः कांश्चित् परन्तपः। मुष्टिभिश्चाहनत् कांश्चिद् नखैः कांश्चिद् व्यदारयत्। (५।४५।१२) यहाँपर हथेली वा परोंकी ठोकरोंसे वा मुक्कोंसे मारना, नाखूनोंसे फाड़ना कहा गया है; यह सब बन्दरोंका ही स्पष्ट

स्वभाव है। मानुषी सेनाका ऐसा वर्णन होनेपर उनकी स्पष्ट निन्दा थी, और उनके नेता की भी, परन्तु यहांपर स्वाभाविकता रखी गई है, निन्दा नहीं। स्वाभाविकताके सिद्ध होनेसे हनुमानादि वानर सिद्ध हुए, मनुष्य नहीं। 'नत्वेवं वानरा हन्तुं शक्याः पादपयोधिनः' (६।३३।६) यहाँपर वानरोंका वृक्षों द्वारा तथा अन्यत्र पहाड़ों एवं पत्थरों द्वारा युद्ध दिखलाया है, मनुष्य ऐसा युद्ध नहीं करते।

(२८) 'नहि ते वानरं तेजो रूपमात्रं तु वानरम्' (५।५०।१०) यह प्रहस्त हनुमान्‌को कह रहा है कि-तेरी शक्ल तो बन्दरों वाली है, पर ताकत उनसे बढ़कर है। यही बात रावणने सोची थी-'वानरोऽयमिति ज्ञात्वा नहि शुध्यति मे मनः। नैवाहं तं कपिं मन्ये यथेयं प्रस्तुता कथा' (५।४६।६-७) 'महत् सत्त्वमिदं ज्ञेयं कपि-रूपं व्यवस्थितम्' (५।४६।१४) यहाँपर श्रीवाल्मीकिने हनुमान्‌को स्पष्ट ही बन्दररूपवाला बताया है, मनुष्य नहीं। इसी प्रकार 'जातिरेव मम त्वेषा वानरोऽहमिहागतः' (५।५०।१४) यहाँपर उसकी वानर जाति दिखलाई है। इस पर रामाभिरामने स्पष्ट किया है-'एषा वानराकृतिर्मम जातिरेव जन्मकृतैव, अतो वानर एव अहम् इह आगतः'।

(२९) 'केचित् किलकिलां चक्रुर्वानरा वनगोचराः। प्रास्फोटयंश्च पुच्छानि संनिजघ्नुः पदान्यपि' (६।४।६४) 'भुजान् विक्षिप्य शैलाँश्च द्रुमान् अन्ये बभञ्जिरे। आरोहन्तश्च शृङ्गाणि गिरीणां गिरिगोचराः' (६५) 'महानादान् प्रमुञ्चन्ति क्ष्वेडमन्ये प्रचक्रिरे।

ऊरुवेगैश्च ममृदुर्लताजालान्यनेकशः' (६६) 'जृम्भमाणाश्च विक्रान्ता विचिक्रीडुः शिलाद्रुमैः' (६७) 'नर्दतां कपिमुख्यानां' (सु. ३६।५०) इत्यादि श्लोकोंमें बन्दरोंका किलकारी मारना, पूँछ फटकारना, पैरोंकी ठोकरें मारना, वृक्षों वा पहाड़ोंको तोड़ना, जोरसे चीखना-चिल्लाना, पहाड़ों तथा वृक्षोंकी चोटियों पर चढ़ जाना, लताओंको मसलना, ऐसे स्वाभाविक रूपसे चित्रित किया गया है कि—उनका मनुष्य सिद्ध होना सम्भव भी नहीं हो सकता। ६४वें पद्यमें पूँछका फटकारना बनावटी पूँछ-वालोंका काम नहीं हो सकता। इसी पद्यमें 'वानरा वनगोचराः' यह भिन्न-भिन्न शब्द रखना भी बता रहा है कि—यहाँ वनवासी मनुष्योंका वर्णन नहीं, किन्तु वनवासी वन्दरोंका है। 'शैल-शृङ्गाणि शतशः प्रवृद्धांश्च महीरुहान्' (कि. ३१।१८) डरे हुए वानरोंका पहाड़ोंकी चोटी तथा वृक्षों पर चढ़ जाना उन्हें स्पष्ट बन्दर बता रहा है। 'अयं प्रकृत्या चपलः कपिस्तु' (कि. ३३।५७) वानरकी चंचलता बहुत स्थलोंमें बताई गई है; अतः उनका वास्तविक वानर होना सुस्पष्ट है।

(३०) 'यस्य (रामस्य) शाखामृगा मित्राण्यृक्षाः कालमुखास्तथा। जात्यन्तरगता राजन्! एतद् बुद्ध्यानुचिन्तय' (वनपर्व. २६२।१२) इस महाभारतके वचनसे स्पष्ट है कि—रामके सहायक बन्दर वा लंगूर जात्यन्तर (मनुष्यसे भिन्न जातिवाले) हैं। यदि वे क्षत्रिय जातिवाले होते; तो श्रीरामके भी क्षत्रिय होनेसे, अथवा यदि वे मनुष्य थे, तब रामके भी मनुष्य होनेसे, अथवा यदि वे

वनवासी थे; तब रामके भी वनवासी होनेसे—जैसेकि रामकेलिए 'मानुषो वनगोचरः' (६।११३।६) 'वनगोचर' शब्द आया है; उनकेलिए महाभारतकार 'जात्यन्तर' शब्दका प्रयोग न करते। 'अन्या जातिर्जात्यन्तरम्' यह उक्त शब्दका विग्रह है। 'मयूर-व्यंसकादयश्च' (पा. २।१।७२) इस पाणिनिसूत्रसे समास हुआ है। दूसरी जाति जात्यन्तर होती है। (डो.ला.शा.)

(३१) जोकि प्रतिपक्षी कहता है—'यस्य देवस्य यद् रूप वेषो यश्च पराक्रमः। अजायत समं तेन तस्य-तस्य पृथक्-पृथक्' (वाल्मी. १।१७।२०) (जिस-जिस देवका जैसा-जैसा आकार-प्रकार वेष वा पराक्रम था; उसका पुत्र भी उसी रूप, आकार वा पराक्रमवाला हुआ। स्पष्ट है कि—इन्द्रका पुत्र बाली इन्द्रके समान रूपवाला था—आदि) किसी की भी आकृति बन्दरों जैसी नहीं थी, सभी मनुष्याकृति मनुष्य थे, (हनुमान आदि वानर पृ. ११०)। प्रतिपक्षियोंके छल पर बड़ा खेद आता है। वे पूर्वापर-प्रकरणको छिपाकर अपनी मनमानी बातें प्राचीन ग्रन्थोंके अर्थोंमें ठूँस दिया करते हैं।

वहाँ तो लिखा है—'अप्सरःसु च मुख्यासु...ऋक्षविद्याधरीषु च। किन्नरीणां च गात्रेषु वानरीणां तनूषु च। सृजध्वं हरि (वानर)-रूपेण पुत्रान् तुल्यपराक्रमान्' (१।१७।५-६) यहाँपर ब्रह्मा द्वारा देवोंको आदेश दिया गया था कि—रीछ-वानर आदिके शरीर वाली अप्सराओंमें (जो देवस्त्रियां थीं) देवों द्वारा रीछ-वानर रूपधारी लड़कोंको उत्पन्न करो। जैसे कि प्राचीन टीकाकार

रामाभिरामने लिखा है-'वानरीणां तनूषु-वानरीशरीरसदृशशरीरासु अप्सरः प्रभृतिषु (६) ऋक्षीषु -ऋक्षशरीरासु (२१) उसी आदेशके अनुसार देवताओं द्वारा वानररूपधारी लड़के पैदा किये गये। जैसेकि-रामायणमें ही स्पष्ट किया है—

'ते (देवाः) तथोक्ता भगवता (ब्रह्मणा) तत् (वानरादिरूपवतां पुत्राणामुत्पादनरूपं) प्रतिश्रुत्य शासनम्। जनयामासुरेवं ते पुत्रान् वानररूपिणः' (१।१७।८) (देवोंने भगवान् ब्रह्माकी आज्ञा मानकर बन्दररूपवाले पुत्रोंको उत्पन्न किया)। 'ऋषयश्च महात्मानः सुतान् वीरान् ससृजुर्वनचारिणः' (वानरान्) (६) प्रतिपक्षी भी 'वनचारी'का 'वानर' अर्थ बताता है-'वानर और वनचारी एक ही हैं' (हनुमान् आदि पृ. १२७) यह 'वनौकाः'का दूसरा शब्द है। जब 'वानरान् वनचारिणः' दो शब्द पद्यमें इकट्ठे हुआ करें; तब तो 'वनचारी' यौगिक हो जाता है। जब केवल 'वनचारी' हो; तब बन्दरका रूढ नाम हो जाता है। हनुमान्की माता अञ्जना 'कपित्वे कामरूपिणी। दुहिता वानरेन्द्रस्य' (४।६६।६) वानरी तथा वानरकी लड़की तथा वानरकी पत्नी थी (८-१०) हाँ, कामरूपिणी थी; अतः मनुष्य-शरीर भी बना लिया करती थी।

इन पूर्व लिखे पद्योंको प्रतिपक्षीने छिपा दिया है। एक और टीकाकार आर्यसमाजीने रामायणमें इस विषयमें बहुतसे प्रक्षेप बता दिये हैं; उसमें यह अद्भुतता की है कि-जहाँ अपने मतकी विरुद्धता मालूम पड़ी; वहाँ एक आधे को तो अप्रमाण एवं

प्रक्षिप्त मान लिया; कहीं पद्यके आधे पादको ही प्रक्षिप्त मान लिया, शेषको अप्रक्षिप्त। इससे इनके गलत प्रयास पर हँसी आती है। इन लोगोंका पूर्वापर छिपा देने, या प्रक्षिप्तताका आविष्कार करनेका शब्दोंके अर्थमें तोड़-मरोड़ किये बिना पक्ष सिद्ध ही नहीं होता; अतः इस वाणी-स्तेयरूप पापसे जिसकी मनुजीने (४।२५६) भारी निन्दा की है; नहीं डरते। इन अनृतवक्ताओंकेलिए वेद भी वरुणके पाशोंको बताता ही है- 'ये ते पाशा वरुण ! सप्त-सप्त...छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं, यः सत्यवादी अति तं सृजन्तु' (अथर्व. ४।१६।६)।

कितना स्पष्ट रामायणमें लिखा है–'ऋक्ष-वानर-गोपुच्छाः (रीछ, बन्दर, लंगूर) क्षिप्रमेवाभिजज्ञिरे' (१।१७।१६) ईदृशानां प्रसूतानि हरीणां कामरूपिणाम्' (४।१७।२६) (वे वानर आदि इच्छानुसार रूप बदल सकते थे)। सो वहाँ बन्दर रूपवाला शरीर होते हुए भी अप्राकृतता (दिव्यता) वश उनका रंगरूप एवं वेष आदि उन देवताओंके समान था; तभी बाली-सुग्रीव आदि राजा उन देवताओं वाले मुकुट तथा वेष तथा रंगढंग और बल रखते थे। शेष बाहरी आकृति बन्दरोंकी ही थी। इस रामायण-प्रोक्त सत्यको 'इश्क, मुश्क, खांसी खुश्क' की भांति कभी छिपाया नहीं जा सकता। छिपानेवाले यमलोकमें यातनायें प्राप्त करेंगे; जिनका वेदमें संकेत है।

(३२) अब कुछ जाम्बवान् तथा उसकी सेनाके विषयमें भी देख लेना चाहिये—'पूर्वमेव मया सृष्टो जाम्बवान् ऋक्षपुङ्गवः'

(१।१७।७) यहाँ जाम्बवान्को रीछ कहा है। रीछोंकी अयोनिज उत्पत्ति पहले दिखलाई ही जा चुकी है—'राक्षसानां च सदृशाः पिशाचानां च रोमशाः। एतस्य सैन्या बहवः' (युद्ध. २७।१४) यहाँ जाम्बवान्के सैनिक 'रोमश' बताये गये हैं। रोम सबके हुआ करते हैं. पर 'रोमश'का अर्थ है–'बहुत वा बड़े-बड़े रोमोंवाले'। 'रोमश'में मत्वर्थीय 'श' प्रत्यय है (पा. ५।२।१००) मत्वर्थीय प्रत्यय 'भूम-निन्दा-प्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने। संसर्गेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः' इन अर्थोंमें हुआ करते हैं। इनमें पहला अर्थ है 'भूमा' बहुतायत; अन्य अर्थ है अतिशायन—बड़े-बड़े। बड़े-बड़े बहुत रोमों (बालों) वाले। तब उनकी मनुष्यता भी खण्डित हो गई—क्योंकि मनुष्य 'रोमश' नहीं होते। रीछोंके तो बड़े-बड़े रोम प्रत्यक्ष हैं।

कई महाशय कहते हैं कि—'उन्हें 'ऋक्षवान्' पर्वतमें रहनेके कारण ऋक्ष (रीछ) कहते थे, वास्तवमें वे मनुष्य थे' यह भी ठीक नहीं। उस पहाड़में रीछ बहुत रहा करते थे, इसलिए उस पहाड़ का नाम 'ऋक्षवान्' हो गया था। 'ऋक्षाः सन्ति अस्मिन्' इस अर्थमें 'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' (पा० ५।२।९४) इस अर्थमें 'ऋक्ष'को मतुप् प्रत्यय होता है; और 'मादुपधायाश्च मतोर्वः' (पा० ८।२।९) सूत्रसे मतुप्के 'म' को 'व' हो जाता है। यदि ऋक्षवान्-पर्वतमें रहनेसे 'ऋक्ष' नाम हो जावे; तो 'अन्ये (हरयः) ऋक्षवतः प्रस्थान उपतस्थुः सहस्रशः' (वाल्मी १।१७।३१) यहाँपर वन्दरोंका भी ऋक्षवान् नाम वाले पहाड़में रहना कहा

है, पर उन्हें 'ऋक्ष' नहीं कहा गया, किन्तु हरि (वानर) ही कहा गया है। तब रीछोंको मनुष्य बताने वाले खण्डित हो गये।

(३३) पक्ष-तुण्ड (चञ्चु) प्रहारैश्च शतशो जर्जरीकृतम' (महा-वन पर्व २७६।५) यहां गृध्रराज जटायुका पंख वा चोंचें मारना कहा है, सो मनुष्यका भला चोंचे वा पंख मारना कैसे हो सके ? सो वह जटायु भी पक्षी था; तभी उसे २७६।६ पद्यमें पतत्री (पक्षी) कहा गया है। आगे 'छिन्न पक्षद्वयं खगम्' (२७६।२२) उसे पक्षी तथा रावण द्वारा उसके दोनों पंखों का काटना कहा है। इसीसे रामायणमें उसे 'तीक्ष्णतुण्डः (चञ्चुः)' (३।५०।५) गृध्र (३।१४।१) कहा है। हां, यह भी उक्त दिव्य रीछ-वानरोंकी भांति दिव्य पक्षी थे, साधारण रीछ, बन्दर, पक्षी नहीं थे। कश्यपसे विनतामें उत्पन्न गरुड़ भी पक्षी प्रसिद्ध है, वह विष्णुका वाहन वैनतेय नामसे प्रसिद्ध है।

"गरुड़ उसका नाम था, उसकी जाति गरुड़ पक्षी नहीं थी" यह प्रतिपक्षियोंका कथन छल-पूर्ण तथा असत्य एवं निर्मूल है। उसे बड़े पंख होनेसे ही मत्वर्थीय अतिशायन अर्थवाले मतुप् प्रत्ययसे ही 'गरुत्मान्' कहा जाता है। उसी (गरुड़)के बड़े भाई अरुणसे सम्पाति तथा जटायु—ये दोनों दिव्य गीध पक्षी रूपमें उत्पन्न हुए थे। हां, कामरूप (अपनी इच्छानुरूप रूप बदल सकने वाले) (वाल्मी० ४।६०।१६) अवश्य थे। सम्पातिने भी सूर्य द्वारा अपने पंख जलने का वृत्त वानरोंको सुनाया था।

तब इनको मनुष्य बताना वादियोंका निर्मूल ही है। हाँ, देव वा ऋषि अंश होनेसे दिव्यभाववश इन पक्षियोंमें भी बड़ा बल था। तभी जटायुको दशरथका सखा (सहायक) (वाल्मी० ३।१४।३५) कहा गया।

(३४) कई लोग ब्रिटिश—सिंह, रूसी—भालू, चीनी—चीता आदि तथा सिंह, सिंह-पुरुष, नृसिंह, व्याघ्र, पुङ्गव, पुरुषर्षभ, आदि शब्दोंका मनुष्योंमें प्रयोग दिखाकर (हनुमानादि० पृ० १३३) रामायणमें वानर-रीछ-पक्षी आदिको भी मनुष्य सिद्ध करना चाहते हैं, और वानर-शब्द रखनेसे जहां छन्दोभङ्ग दीखा, वहां कपि, प्लवङ्ग आदि उससे मिलते-जुलते शब्दोंका प्रयोग रखना रामायणमें मानते हैं (पृ० १३२-१३३) ऐसे छली व्यक्तियों की बुद्धि दयनीय है। उन्हें यह जानना चाहिये कि सिंह, कुञ्जर, ऋषभ, पुङ्गव आदि शब्द अवश्य प्रशंसावाचक हैं— 'वृन्दारकनाग-कुञ्जरैः पूज्यमानम्' (पा० २।१।६२) यह सूत्र उसमें ज्ञापक है। जैसे इसी रामायणमें 'कपि-कुञ्जर' (५।५७।४२) शब्द आया है। 'सिद्धान्त-कौमुदी'में उक्त सूत्रके उदाहरणमें गोनागः, गोकुञ्जरः' (श्रेष्ठ बैल) आया है, परन्तु वानर, ऋक्ष, गृध्र पक्षी आदि शब्द कहीं प्रशंसावाचक नहीं आये। 'वानर' (बन्दर) निन्दा में तो आता है, प्रशंसा में नहीं।

'नृसिंह' तो अवतार थे, जिसमें पुरुष और सिंह दोनोंकी मिश्रित आकृति थी। या किसी पुरुषका नाम हो; तो वहाँ 'ना (पुरुषः) सिंह इव' यह विग्रह होता है, वहां 'उपमितं व्याघ्रा-

दिभिः' (पा. २।१।५६)से समास होता है, 'गोव्याघ्रः' आदि इसीके उदाहरण हैं। पुङ्गव, ऋषभ आदि बैलवाचक होते हुए भी समासमें श्रेष्ठ-वाचक हैं। पुरुषसिंहमें भी 'पुरुषः सिंह इव' यही विग्रह है। 'सिंह-पुरुष' आदिमें गुण-सम्बन्ध वश गौणी लक्षणा है। 'सिंहो माणवकः, गौर्वाहीकः' आदि इसीके उदाहरण हैं, पर यह भी क्वाचित्क होते हैं, हर समय इनका प्रयोग नहीं होता; पर वानर शब्द इन अर्थोंमें कहीं भी प्रयुक्त नहीं; और समास-बद्ध भी नहीं। रामायणादिमें हनूमानादिकेलिए 'वानर' शब्दका क्वाचित्क प्रयोग होता; और वे धड़ल्लेसे रामायणमें मनुष्य कहे गये होते; तब तो रामायणमें वानर उनकेलिए लाक्षणिक प्रयोग भी कथञ्चित् माना जाता, पर वहाँ तो उनकेलिए 'वानर' शब्द बार-बार आता है, और वहाँ स्पष्टतया उन्हें 'वानर' बताया भी गया है, नर उन्हें कहीं भी नहीं कहा गया, तब उक्त शब्दों-का समाधानार्थ यहां प्रयोग देना 'विषम-उपन्यास' है।

(३५) जो कि आर्यपथिकने 'सुग्रीवने अपने-आपको मनुष्य कहा' यह कहकर उसमें 'अरयश्च मनुष्येण विज्ञेयाश्छन्नचारिणः' (कि. २।२२) यह रामायणीय प्रमाण दिया है, यह उसकी दयनीय दशा बता रहा है, और सिद्ध होता है कि—उसने बड़ा प्रयत्न किया है कि—कहीं हनुमानादिकेलिए 'मनुष्य' शब्द मिले; पर उस बेचारेको निराशा ही हस्तगत हुई। यहाँ पर 'मनुष्येण' यह सामान्य शब्द है, यह उसके अपनेलिए नहीं है, किन्तु अन्यकेलिए है, तभी यहाँ 'मया' आदि रूपसे 'अस्मद्'-

शब्दका प्रयोग नहीं आया। इसी प्रकार हितोपदेश आदिमें गीदड़-बिलाव आदि की कथाओंमें भी 'मनुष्य' शब्दका प्रयोग आता है, पर इससे वे मनुष्य नहीं हो जाते। पञ्चतन्त्रमें शशक-ने भासुरकसिंहकेलिए कहा है—'स्वभूमिहेतोः परिभवाच्च युध्यन्ते क्षत्रियाः' पर इससे सिंह क्षत्रिय मनुष्य नहीं बन जाता। 'न सोऽस्ति पुरुषो लोके' (१।२६४) यहाँ दमनकने पिङ्गलककेलिए 'मनुष्य' वाचक 'पुरुष' शब्दका प्रयोग किया है। 'वरं व्याधि-र्मनुष्याणां' (१।३०३) यहाँ सञ्जीवक बैल अपने लिए कह रहा है। इससे यह पञ्चतन्त्रका बैल मनुष्य नहीं बन जाता। 'किमङ्गवाग-हस्तवता नरेण' (मित्रभेद)में दमनक शृगालने यह पद्य अपनेलिए कहा है, इससे वह शृगाल 'नर' (मनुष्य) नहीं बन जाता। इस प्रकारके सैकड़ों पद्य दिये जा सकते हैं।

फलतः 'वानर' शब्द किसी प्राचीन ग्रन्थमें प्रशंसा-अर्थमें प्रयुक्त नहीं; हनूमानादिकी वहां पर प्रशंसा ही ग्रन्थकारको अभिमत है; तब वहां 'सिंह' आदि शब्दोंका काचित्क प्रयोग न करके 'वानर' वा उसके पर्यायवाचकोंका सार्वत्रिक प्रयोग क्या हनुमानादिकी निन्दा करनेकेलिए लिखा है ? 'देवदत्तो वानरः' यह लाक्षणिक प्रयोग, मनुष्योंकी 'बन्दर-घुड़की' आदि लाक्षणिक प्रयोग निन्दार्थक ही तो हैं। किसी लड़केको कहें कि—'अरे बन्दर !' तो वह लड़का भी उस शब्दको बुरा मनाता है। वहां अन्य भी कोई उसकी प्रशंसा 'वानर' शब्दसे नहीं समझता। तब महाकवि मुनि वाल्मीकि द्वारा हनुमानादि प्रशंसनीयपात्रोंको

बार-बार वानर वा उसके पर्यायवाचकों से बुलानेसे स्पष्ट है कि—श्रीवाल्मीकिको वहां उनकी वस्तुतः पशु-जातीयता ही अभिप्रेत है; मनुष्यता नहीं। स्वाभाविकतामें कुछ भी निन्दा नहीं होती।

क्या मनुष्य एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर या एक शाखासे अन्य शाखापर स्वाभाविकतासे उछल-कूद किया करते हैं? अथवा कटकटा शब्द करते हैं? किलकारियाँ मारते हैं? वीर पुरुष क्या दाढ़ों से दूसरेको काटते हैं, वा नाखूनोंसे स्वाभाविकतया नोचते हैं! यदि ऐसा नहीं, परन्तु रामायणमें वैसा उनके लिए मिलता है, जिसके प्रमाण हम पूर्व उपस्थित कर चुके हैं, तब स्पष्ट है कि—वे वहां वानर हैं, नर नहीं। यदि रामायणका यह निर्णय आजकलके सुधारकोंको मान्य नहीं है, 'तब हनूमानादि भी कोई थे' इस विषयमें भी वादियोंके पास रामायण, महा-भारत, पुराणोंके अतिरिक्त कोई प्रमाण नहीं। आधार होनेपर ही तो चित्र होता है।

'छन्दोभङ्गके भयसे कविने 'वानर'के स्थान पर 'प्लवग' आदि शब्द रखे; वानरकी पर्यायवाचकताके नाते नहीं' इस प्रतिपक्षीकी बातसे तो बड़ी हँसी आती है। कवि इतना कमजोर नहीं होता कि—मनचाहा शब्द न रख सके। जहां 'प्लवगर्षभ' रखा जाता है, वहां 'वानरर्षभ' भी अनुष्टुप् जातीय (पथ्यावक्त्र) छन्दमें जहां-तहां आ सकता है, कोई छन्दोभङ्ग की बात नहीं। अतः यह वादीका हेत्वाभास उसके पक्षकी निर्मूलताका प्रमाण

है, उन युक्तियोंका प्रत्युत्तर न दे सकनेका यह स्पष्ट चिह्न है। यदि कवि अपना स्पष्ट शब्द नहीं रख सकता; तो यह उसकी कमजोरी होती है। उसे 'कवि' ही नहीं कहा जा सकता। 'एतेषां कपि मुख्यानां' (कि० ३३।१२)में 'एषां वानरमुख्यानां' यह पाठ स्पष्ट रखा जा सकता है। 'हरिभिः संवृतद्वारं' (कि० ३३।१६)में 'वानरैः संवृतद्वारं' यह पाठ बिना किसी बलात्कारके आ सकता है, कुछ भी छन्दोभङ्गका अवसर नहीं आता; तब वानरके विविध पर्यायवाचकोंके देनेसे स्पष्ट है कि—यह सब बन्दर थे। हाँ, दिव्य बन्दर थे, साधारण नहीं। जो वानर ही है, उसके भिन्न-भिन्न पर्यायवाचक दिये जा सकते हैं। जो बन्दर नहीं है, केवल 'वानर' किसीका विशेष नाम है, जैसे 'अमरसिंह' वहां उसका पर्याय वाचक—देव-केसरी', अथवा 'देवता-शेर' आदि नहीं दिया जा सकता। 'नामग्रामयोर्न संस्कृतम्' यह लौकिक एवं शास्त्रीय व्यवहार है। इससे प्रतिपक्षीका पक्ष कट गया।

(३६) वादियोंका वानरोंको नर सिद्ध करनेमें प्रयत्न इसलिए है कि—उनके जो कार्य रामायण में किये दिखलाये गये हैं; उन्हें उनके मतानुसार बन्दर कभी नहीं कर सकते, इसलिए वे उन्हें 'मनुष्य' सिद्ध करते हैं; पर महाशयो! वहां का वर्णित कार्य मनुष्य भी तो नहीं कर सकते। वस्तुतः वे वानर देवताओं के अवतार थे; अतएव उनके लिए रामायणवर्णित कृत्य असम्भव नहीं थे—यह हम आगे कहने वाले हैं। यदि यह पक्ष वादी

लोग मान लें, तब उनको बार-बार लघुशङ्काएँ न हों; जो उनकी दुर्बलता की निशानी हैं; पर देवतावाद मान लेने से उनके साम्प्रदायिक-सिद्धान्तका भङ्ग होता है; तभी वे कुतर्कोंका सहारा लेकर पृथ्वी-आकाशके कुलाबे मिलाकर असम्भूत विचित्र कल्पनाएँ किया करते हैं। वस्तुतः देवतावाद न मानने से सारा वैदिकसाहित्य एवं पौराणिक, ऐतिहासिक और लौकिक साहित्य व्यर्थ हो जाता है।

(३७) यदि हनुमानादिको लौकिक वानर भी मान लिया जाय; तब भी दोष नहीं आता? बन्दरोंको प्रयत्नपूर्वक सिखलाया जावे; तब वे सब प्रकारके कार्य कर सकते हैं। 'आर्यपथिक'की 'हनुमान आदि वानर' पुस्तकके पृ. ४ पं. ६-१४ में उन्होंने स्वयं लिखा है—

'एक बन्दर पिछले दिनों एक चित्रपट पर भी काम करता दिखाया गया था। उसकी मासिक वेतन भी इतनी थी कि-उसपर इनकमटैक्स लगता था। वह 'इन्सानियत' नामक फिल्म में काम करता था। वह बन्दर अनेक सुन्दर वस्त्र पहनता था'।

यहाँ वादीका यह लिखना व्यर्थ है कि-'ये बन्दर मलमूत्र-त्याग स्वयं करते हैं, खाना स्वयं खाते हैं, पर वस्त्र स्वयं नहीं पहनते हैं। इनको कोई वस्त्र पहनाता है, तो पहनते हैं। हनुमान् आदि स्वयं वस्त्र पहनते थे'। महाशय जी; अभ्यासकी महिमा बड़ी है। उससे सभी कार्य किये-कराये जा सकते हैं। श्रीकन्हैयालाल मिश्र प्रभाकरने 'ब्राह्मण-सर्वस्व' (पुराणाङ्क)में

लिखा था कि—'एक बन्दर अपना नाम लिखा करता था। कई बन्दर दुकानोंसे कई वस्तुएँ पैसा देकर ले आया करते थे: यह समाचारपत्र-संसारमें प्रसिद्ध है। आजकल सर्कसोंवाले रीछसे साईकल चलवाते हैं; हाथीको चौकीपर बड़े प्रयत्नसे बैठवाते हैं; जो उस समय पूरा गणेशजी लगता है। इस प्रकार पक्षियोंसे, पशुओंसे अन्य बड़े काम लिये जाते हैं; और लिये जाते रहेंगे।

हम गाजियाबादमें एक बगीचीमें रहते थे; उसमें वृक्षोंपर बन्दर रहा करते थे। एक बार एक बन्दर कहींसे एक चुन्नी उठा लाया: और शीशा भी। शीशेमें वह वार-बार अपनी शकल देखता था। सिर पर चुन्नी रखकर घूँघटसा निकालता था। बन्दर बड़ा नक्काल होता है, वह जैसा दूसरेको करते देखे: वैसा करता है। यदि गतजन्मका वह आरूढ़-पतित हो, और उसे पूर्व जन्मकी भी स्मृति हो; तो उसे वस्त्र पहननेमें भी कोई कठिनाई न पड़े।

आर्यसमाजके श्रीराजेन्द्र (अतरौली) जीने 'पूर्वजन्मस्मृति' (पृ. ३४)में एक सर्पको पूर्वजन्मकी स्मृति दिखलाई है। और पृ. ६०-६१-६२में एक जीवित वृद्धकी आत्माका एक मृतक युवाके शरीरमें योगविद्या द्वारा प्रवेश दिखलाया है, तब कोई योगी भी बन्दरके मृतक शरीरमें अपनी आत्माका प्रवेश कराकर फिर सब काम मनुष्यों जैसे कर सकता है; उसमें क्या असम्भव है? बताया जा चुका है कि—जन्मसिद्ध योगी देवोंने अपनी आत्माएँ वानरशरीरोंमें डाली थीं, तब वे अप्राकृत (दिव्य) बन्दर उन

जन्मसिद्ध योगी-देवताओंकी महान शक्तिवाले कार्य करें, इसमें क्या असम्भव है ? एक कुत्तेका वृत्त हम आगे लिखेंगे।

गत हिटलरी महायुद्धमें जापान वालोंने बन्दरोंसे काम लिया था; लङ्कापर आक्रमण भी किया था। लाहौरके दैनिक 'विश्वबन्धु' (२४।११।४४ के डाकसंस्करण)में यह घटना प्रकाशित हुई थी-'जापानियोंने वानरोंकी सेना तैयार कर ली। जापानियोंने मध्य-बर्मामें वानरोंको सिखानेकेलिए स्कूल खोल रखे हैं। साधारण रंगरूटोंकी भांति ट्रेनिङ्गके पश्चात् वे 'शिक्षित लड़ाका सैनिक' बन जाते हैं। वे वृक्षोंमें छिपकर बैठते हैं, और शत्रुपर हस्तबम फेंकते हैं। वानरोंको खच्चरोंपर चढ़नेकी शिक्षा भी दी जा रही है। वे उनपर चढ़कर बारूद आदि दूसरे स्थान पहुँचा आते थे'।

जब इस प्रकार गतयुद्धमें-साधारण वानरोंका उपयोग लिया गया; तब युद्धकलाविशारद श्रीरामने भी यदि युद्धमें आरूढ-पतित दिव्य वानरोंको शिक्षित करके उनसे सहायता ले ली हो; उनसे बड़े-बड़े काम ले लिये हों, तब लौकिक दृष्टिसे भी इसमें क्या आश्चर्य ? तभी तो रामायणमें 'तथा सर्वाणि भूतानि तिर्यग्योनिगतान्यपि। प्रियं कुर्वन्ति रामस्य त्यक्त्वा प्राणान् यथा वयम्' (वाल्मी. ४।५६।१०)में जटायु आदि गीध तथा हनुमान् आदिको तिर्यग्योनि (पशु-पक्षी) बताया है, इससे हमारा पक्ष पूर्ण पुष्ट होकर वादियोंका पक्ष सर्वथा कट जाता है। तभी तो एक कविका पद्य भी इस विषयमें प्रसिद्ध है-'यान्ति न्याय-

प्रवृत्तस्य तिर्यञ्चापि सहायताम्'। शेष रहा बन्दरोंका बोलना-चालना। बन्दरकी भी एक भाषा हुआ करती है, जिससे वे परस्पर बातचीत किया करते हैं। तभी तो इकट्ठे हो जाते हैं, इकट्ठे भाग भी जाते हैं। उस भाषाका रूस आदि देशोंके वैज्ञानिकोंने उनके शब्दोंको ग्रामोफोनमें भरकर और उनके सामने बजा-बजाकर ज्ञान प्राप्त कर लिया था, और समाचार-पत्रोंमें उन शब्दोंका संग्रह भी अर्थों समेत किया था।

आर्यमुसाफिर श्रीलेखरामके बने 'पुनर्जन्म' (पृ. ५७)में 'सुबह-सादिक मदरास' पत्रके २०-१०-१८६५के अङ्कसे उद्धृत किया गया है कि-हैदराबाद और करनौलके बीचमें फर्रुखनगरमें एक हाथी मनुष्यकी भांति बातें करता है। फिर वहीं लिखा है-'यदि अँग्रेजी डाक्टर जो पशु-सम्बन्धी खोज करते हैं, इस ओर ध्यान दें; तो वे पशुओंकी बातचीतको बहुधा समझ लें (पंजाब अखबार लाहौर १-१२-१८६५) (पुनर्जन्म श्रीलेखराम आर्य-मुसाफिर पृ. ५६) आर्यपथिकको आर्यमुसाफिरकी बातपर ध्यान दे देना चाहिये। और योगी तो योगविशेषके बलसे 'सर्वभूतरुत-ज्ञान' (योग-विभूति १७) कर सकता है।

जबकि सन्त ज्ञानेश्वर-द्वारा सिरपर हाथ रखनेमात्रसे एक भैंसा भी 'सहस्रशीर्षा' आदि वेदमन्त्र बोल उठा था, यह उस इतिहासमें तथा चित्रपट-संसारमें प्रसिद्ध है, तब अवतारी पुरुष श्रीरामने भी उन आरूढपतित दिव्य वानरोंको भाषाका व्यापार भी सिखला दिया हो; तो इसमें क्या आश्चर्य? इस विषयमें

'पशुपक्षियोंका भाषण' निबन्ध आगे दिया जा रहा है। तब रामायणीय वानरोंको नर बताते हुए वादी प्रायश्चित्तीय सिद्ध हुए। वस्तुतः वानरगण देवताओंके अवतार थे—यह श्रीवाल्मीकिके अनुसार माननेसे सब सङ्गतियां लग जाती हैं। यह न माननेपर फिर रामायणकी काट-छाँट करनी पड़ जाती है। कई उसके वचन छिपाने पड़ जाते हैं; कहीं प्रक्षेप बताना पड़ता है; जैसाकि—आजकलके सुधारक चाहे वे सनातनधर्मी हों, वा आर्यसमाजी-करते चले आ रहे हैं।

(३८) 'हनुमान् आदि वानर नर थे या मनुष्य' (पृ. १५८) प्रतिपक्षीकी पुस्तक सन् १९५९ में प्रकाशित हुई। उसकी उपजीव्य 'क्या रामसेना बन्दर थी ?' यह पुस्तिका थी; जिसे स. ध. प्रतिनिधि सभाके सनातनधर्मी होते हुए भी लेखकने अमृतधाराके आविष्कारक जो आर्यसमाजी थे—सम्भवतः उन्हें प्रसन्न करनेके-लिए लिखा था। वह सन् १९५५ में श्रीठाकुरदत्तजी द्वारा प्रकाशित हुई थी। उसीका सब कुछ लेकर प्रतिपक्षीने उक्त पुस्तकमें उसका अपने ढंगसे भाष्य किया था, जिसके आक्षेपोंका समाधान हम बीच-बीचमें कर चुके हैं; और आगे भी करनेवाले हैं।

उसी उपजीव्य पुस्तिकाके पृ. १२-१३ में सनातनधर्मी लेखक-महोदयने ढुलमुल-नीतिसे कुछ लिखा है, जिसका सार यह है—"दक्षिण-भारतमें रहनेवाली एक जाति थी; उसकी सेनाकी सहायतासे ही श्रीरामचन्द्रजीने लंकापर विजय प्राप्त

की थी; वाल्मीकि श्रीरामके समकालीन थे। उन्होंने रामके राज्यकालमें रामायणकी रचना की थी। इसलिए उसमें रामकी उस सहायक जातिका जो वर्णन किया गया है, वह अधिक विश्वसनीय है' (पृ. ९) 'इन जातिवालोंकी इतनी ऊँची सभ्यता और संस्कृतिके होनेपर भी महर्षि वाल्मीकिने उन्हें नर न कहकर वानर कहा तो है, परन्तु वानर नाम सुनते ही हमें जिन प्राणियोंका बोध होता है, शायद वाल्मीकिका अभिप्राय उनसे न हो, क्योंकि-हम जिन्हें वानर कहते हैं, वे पशु हैं। वे रामायण-वर्णित काम नहीं कर सकते।'

यह बातें लेखकने श्रीपं० शालग्रामशास्त्रीजीकी 'रामायणमें राजनीति' (सं. १९८८)के १११-११२ पृष्ठसे लेकर फिर उन्हीं सूत्रोंका भाष्य किया है। आगे वे लिखते हैं-'जो लोग रामायण-को केवल एक शिक्षाप्रद कथामात्र समझते हैं, उन्हें वाल्मीकिके इस 'वानर' शब्दपर विचार करनेकी आवश्यकता नहीं, परन्तु जो इसे ऐतिहासिक ग्रन्थ मानते हैं, उनकेलिए यह बात अवश्य विचारणीय है' (पृ. १३)

यह लिखकर वे आगे लिखते हैं—'यह बात न थी कि-इस जातिको वानर कहना वाल्मीकिको खटका न हो। खटका उन्हें भी, और उन्होंने 'यस्य देवस्य यद् रूपं तेजो यश्च पराक्रमः' (वाल्मी. १७।१९) 'अजायत समं तेन तस्य तस्य पृथक्-पृथक्' (२०) देवगन्धर्व-पुत्रैश्च वानरैः कामरूपिभिः' (कि. ३३।६) देवसन्तान कहकर उसका सांकेतिक समाधान भी कर दिया गया, किन्तु यह समाधान

श्रद्धालु भक्तोंकेलिए भले ही हो, परन्तु इतिहासके जिज्ञासुओंके लिए यह उत्तर सन्तोषजनक न होगा' (पृ. १३)

पाठकोंने लेखक-महोदयका मत देख लिया। जब लेखकके अनुसार वाल्मीकि श्रीरामके समकालीन थे; उन्होंने रामका इतिहास लिखा, और उसमें रामकी सहायक उस जातिका जो वर्णन किया, वह यदि अधिक विश्वसनीय है, तो श्रीवाल्मीकिने तो उन्हें बड़े धड़ल्लेसे वानर (बन्दर) बताया है, एक-दो स्थानमें नहीं, किन्तु सभी स्थान, यह लेखक भी मानता है। श्रीवाल्मीकि जब लेखकके अनुसार श्रीरामके समयके थे; तब उन्हें उस समयका पूरा इतिहास ज्ञात था और उन्होंने उसे स्वयं लिखा भी, तब हनुमानादिका वानर होना वा लिखना भला महामुनिको क्यों खटकता ? कोई एक स्थानपर ऐसा उन्होंने थोड़े ही लिखा है ? उन्होंने तो स्थान-स्थान पर ऐसा लिखा है। एक-दो प्रमाण यह भी देख लीजिये।-

'हनूमन्तं कपिं व्यक्तं मन्यते, नान्यथेति सा' (५।३६।८६) अर्थात् सीता हनुमान्को वास्तविक बन्दर मानने लगी, रावण-प्रेषित माया-वानर नहीं। तब हनुमान्ने स्पष्ट किया— 'ततोस्मि वायुप्रभवो हि मैथिलि ! ऐरावतस्तत्प्रतिमश्च वानरः' (८८) अर्थात् मैं वायुपुत्र वानर हूँ।

ग्रन्थके तात्पर्यनिर्णयमें 'अभ्यास' (फिर-फिर उसीकी आवृत्ति) भी एक लिङ्ग होता है, उस अभ्याससे स्पष्ट तात्पर्य निर्णीत होगया कि—वे देवावतार अप्राकृत (दिव्य) बन्दर थे, तब

उसमें असम्भवकी क्या बात ? जो बात अपनी संकुचित-बुद्धिमें न जम सके; तब क्या उसे मूल-लेखकसे विरुद्ध अपनी इच्छा-मात्रसे विरूप कल्पित कर देना--क्या यह 'सङ्गत मार्ग' है ? महाभारतमें अर्जुनका ध्वज 'हनुमान'का प्रसिद्ध है; वहां उसे 'कपिध्वज' लिखा गया है, वहां कोई बनवासी मनुष्यका संकेत तक नहीं; अतः हनुमानकी वानरता स्पष्ट सिद्ध हुई।

(३६) जो कि वादियोंको 'हनुमानादिकी वानरतामें वेद-विद्वत्ता, राजभवन आदिकी सत्ता समझमें नहीं आती; वह उनकी अपनी समझका दोष है। 'विद्वाँसो हि देवाः' (शत० ३।७।३।१०) देवता जन्मसे ही विद्वान् होते हैं; इस विषयमें 'आलोक' (४र्थ पुष्प) मंगाना चाहिये। सो उन्हीं देवताओंका जो रंगढंग, वेष, सुवर्णादिके मुकुट पहरना, गुण, पराक्रम आदि था; वह देवावतार (दिव्य) वानरोंमें भी आना स्वाभाविक था। इस प्रकार ठीक-ठीक समाधान प्राप्त हो जाता है; तब उसमें अविश्वासकी दृष्टि रखना प्रच्छन्न-बौद्धताको अपनाना है। देवताओंको यदि न माना जावे; तो वेद, पुराण, इतिहास आदि सारे प्राचीन साहित्यको हमें छोड़ना होगा। आर्यसमाजी देवताओंकी सत्ता नहीं मानते; इसीलिए वे नई संगतियां लगानेको तैयार रहते हैं। वे विद्वान्-मनुष्योंका नाम ही देव कहकर संगति लगाने को उद्यत रहते हैं, पर यह निर्मूल बात है; इस विषयमें हम 'आलोक' (४र्थ पुष्प)में स्पष्टता कर चुके हैं, शङ्काकोंको उसे भली-भांति देखना चाहिये; पर सनातन-

धर्मी भी यदि उन्हींके प्रवाहमें बह जाएँ, तो यह खेदका विषय है।

(४०) कई नये खोजी यह कहते हैं कि—'जब हनुमान् लङ्कामें सीताके पास पहुँचा; और उसे अपने कन्धेपर चढ़ाकर श्रीरामके पास ले जानेका उसने प्रस्ताव रक्खा; तब सीताने कहा कि—मैं पर-पुरुषके शरीरको स्पर्श नहीं करूंगी। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि—हनुमान् मनुष्य था। बन्दर होनेपर मनुष्य-स्पर्शका कोई प्रश्न ही नहीं।' यहाँपर पूर्वपक्षीको 'भर्तुर्भक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर! नाहं स्प्रष्टुं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम !' (५।३७।६२) यह पद्य इष्ट प्रतीत होता है; पर यह पद्य तो पूर्वपक्षीका पक्ष काट देता है। यहाँपर 'हनुमान्' को 'वानर, वानरोत्तम' यह दो सम्बोधन दिये गये हैं; तब यहां हनुमान्की मनुष्यताका प्रश्न ही नहीं हो सकता।

यहांपर 'रामातिरिक्तस्य' कहा है कि—मैं भर्ता रामकी भक्तिके कारण 'रामसे भिन्न' चाहे कोई भी हो, उसके शरीरको स्वतः स्पर्श नहीं करना चाहती। 'रामादन्यस्य नार्हामि संसर्गम्' (५।३८।४) यह भी पद्य पूर्वोक्त पद्यका अनुवादक है। तब हनूमान् भी तो 'रामातिरिक्त' थे। तब वह उसके शरीरका ही स्पर्श स्वतः क्यों करती ? उसका भाव यह है कि—रामके अतिरिक्त चाहे कोई देवता हो, चाहे दैत्य हो, चाहे मनुष्य हो, चाहे पशु हो, चाहे पक्षी हो; उसके शरीरका स्वतः स्पर्श नहीं करूँगी। तब प्रश्न उपस्थित होता था कि—उसने रावणके शरीरका स्पर्श ही

कैसे किया; जब कि वह उसे उठा ले गया था। वह भी तो 'रामातिरिक्त' था। इसपर उसने ६३ वें पद्यमें स्वयं उत्तर दे दिया कि—'यदहं गात्रसंस्पर्शं रावणस्य गता बलात्। अनीशा (स्त्रीत्वात् स्वयं किमपि कर्तुमसमर्था) किं करिष्यामि विनाथा विवशा सती' कि—उस समयमें मैं विवश थी। जब वह रामातिरिक्त किसीके भी शरीरका स्पर्श नहीं करना चाहती थी, तब इससे हनुमान्‌की मनुष्यता सिद्ध न हो सकी। मूलमें 'मनुष्य' शब्द तो दूर, 'पुरुष' शब्द भी नहीं है; और 'वानर' शब्द प्रत्यक्ष है, तब वादीका पक्ष कट गया।

(४१) एक प्रश्न यह है कि—रावणने तपस्यासे प्राप्त वरमें देवता आदि सबसे अवध्यता मांगी, केवल मनुष्यको छोड़ दिया; 'मानुषान् न गणे देव!' (६।१६।४२); तब वानर यहां कहां टपक पड़े?' इसपर जानना चाहिये कि—यहां रावणको नन्दिकेश्वरका शाप था। नन्दी वानररूप किये हुए था; उसे देखकर रावणने उसका उपहास किया, तब उसने रावणको शाप दिया कि—बन्दर उत्पन्न होकर तेरे कुलका विध्वंस करेंगे—'तं (नन्दिनं) दृष्ट्वा वानर-मुखम् अवज्ञाय स राक्षसः। प्रहासं मुमुचे (चकार) तत्र (७।१६।१४) तं क्रुद्धो भगवान नन्दी शङ्कररस्यापरा तनुः। अब्रवीत् तत्र तद् रक्षो दशाननमुपस्थितम्' (१५) यस्माद् वानररूपं मामवज्ञाय दशानन! अशनीपातसंकाशमपहासं प्रमुक्तवान (१६) तस्माद् मद्वीर्य-संयुक्ता मद्रूप-समतेजसः। उत्पत्स्यन्ति वधार्थं हि कुलस्य तव वानराः। (१७) नख-दंष्ट्रायुधाः

क्रूरमनः-सम्पातरंहसः। युद्धोन्मत्ता बलोद्रिक्ताः शैला इव विसर्पिणः' (१८) ते तव प्रबलं दर्पमुत्सेधं च पृथग्विधम्। व्यपनेष्यन्ति सम्भूय' (१९) यह शाप उत्तरकाण्डमें ही केवल नहीं, बल्कि उसे सुन्दर-काण्डमें भी बतलाया गया है—'किमेष भगवान् नन्दी भवेत् साक्षाद् इहागतः। येन शप्तोस्मि कैलासे मया प्रहसिते पुरा। सोऽयं वानरमूर्तिः स्यात् (५।५०।२-३) यह रावण सोच रहा है।

जब रावण नरोंको कुछ नहीं समझता था; तब वानरोंको क्या समझता? अतः उसने अपने अवध्यत्वमें देव-दैत्योंके लिए कहा; पर नर-वानर छोड़ दिये। तब उसके मारनेकेलिए नर-वानर-रीछ आदि रूपसे ही देवताओंको अवतीर्ण होना था। वरके कारण वे देव-रूपमें तो रावणको मार सकते नहीं थे। उसमें विष्णुदेवको राम-लक्ष्मणादि मनुष्य रूपमें, तथा अन्य देवोंको जाम्बवान्-हनुमानादि रीछ-वानररूपमें अवतीर्ण होना पड़ गया। इस प्रकार वाल्मीकिरामायण-महाभारतादिके बाह्याभ्यन्तरिक प्रमाणोंसे हनूमान् आदिकी वानरता स्पष्ट सिद्ध हो गई। इसमें हनुमान् तो अमर रहे; जाम्बवान्, मैन्द, द्विविद आदि अन्य भी कई रीछ-वानर चिरंजीवी रहे; इसलिए वे महाभारत-कालमें भी दीखते हैं। द्विविद वानरको श्रीबलरामने मारा था। जाम्बवान्की कामरूपिणी लड़की जाम्बवतीसे श्रीकृष्णने विवाह किया था; तब वादियोंका उस पर प्रश्न व्यर्थ है।

(४२) अवशिष्ट प्रश्न यह है कि 'रामायणमें जो कार्य वानरोंने किया, वह वानरगण-साध्य नहीं है, तब वहाँ वानरों-से सम्बन्ध क्यों जोड़ा जाता है; उन्हें मनुष्य ही क्यों न मान लिया जावे ?' इस पर उत्तर यह है कि—यदि वह कार्य वानर-गण साध्य नहीं; तो वह मनुष्य-जातिसे भी साध्य नहीं। आप लोग उन्हें साधारण बन्दर मानते हैं; पर यह स्मर्तव्य है कि—वे साधारण बन्दर नहीं थे। वस्तुतः वे अप्राकृत वानर अर्थात् देवावतार ही थे। देवताओंने ही श्रीरामके कृत्यकेलिए विष्णुके कथनानुसार विशिष्ट वानररूपता स्वीकृत की थी।

देवताओंकी शक्ति अनन्त होती है; ऐसा वेदादि-शास्त्रोंका कथन है। इसलिए वेदमें मरुत् नामक देवोंकेलिए जिनके अवतार हनूमान् थे—कहा है—'अनन्तशुष्माः' (ऋ० १।६४।१०) वे अनन्त बल वाले होते हैं। 'अपारो वो महिमा' (ऋ० ५।८७।३४) (हे देवविशेष मरुतो, तुम्हारी महिमा अपार है।) इस विषय में अधिक हम किसी अन्य पुष्पमें रखेंगे। तब मरुत्‌देवके अवतार हनूमान् भी अनन्तबलशाली थे। तभी तो उन मरुतों-(देवों) के अवतार वानर भी कामरूप-(अपनी इच्छानुसार शरीर बना सकने वाले), हाथी, पहाड़ आदिके समान बड़े शरीर वाले, देवभाषा (संस्कृत) बोलने वाले, वेद-वेदाङ्गप्रवीण, मनुष्यकी भान्ति गति-चेष्टा वाले रामायणमें कहे गये हैं।

देवविशेष मरुतोंको वेदमें 'मर्या इव' (ऋ. ५।५६।३,५) 'न मर्या अरेपसः' (ऋ० १०।७८।१,४) १०।७७।३) इत्यादिस्थलोंमें

मनुष्योंकी तरह कहा है। 'बृहद्देवता' (५।६७)मेंभी उन्हें पुरुषों (मनुष्यों) के शरीरवाला कहा है। 'ताँस्तुल्यवयसो दृष्ट्वा देवान् पुरुषविग्रहान्' (५।६७) 'ततः स मरुतो देवान् रुद्रपुत्रान् अबुध्यत' (६८)। तब यदि रामायणमें उन देवोंके अवतार अप्राकृत(दिव्य) वानर आदि मनुष्योंकी भान्ति राज्यकार्य तथा अन्य कार्य करते भी थे; तो इससे वे मनुष्य नहीं हो जाते। इससे पूर्वपक्षियोंका देवावतार वानरोंके मनुष्य-जैसे कार्य ढूंढनेका परिश्रम व्यर्थ गया। अब उन्हें हमारे कहे रामायणीय वचन देखकर वानरों-को मनुष्य न मान कर उन्हें देवावतार-विशेष वानर जानना चाहिये। इस प्रकारके मानुषी व्यवहारके अभिज्ञ वानरादि जो होते हैं; उनपर भी मानुषी व्यवहारकी मर्यादा कुछ-कुछ चलती है, जिससे श्रीराम द्वारा उसके उल्लंघनकर्ता वालीको मारा गया। उनसे किया हुआ लोकोत्तर कार्य वनवासी-मनुष्यों द्वारा भी सम्भव नहीं। रामायणमें वर्णित वानरोंकी पूंछ, उनकी मुखाकृति, शरीरपर बाल, कूदना-फांदना, दान्त पीसना, नखों-दाढ़ों द्वारा काटना-नोचना, किलकिला शब्द आदि स्पष्ट सिद्ध करते हैं कि वे आकृति और शरीरमें वानर-योनि वाले ही थे, पर उनसे बहुत सी विशेषताओं वाले थे।

(४३) उन वानरोंका देवावतारत्व वाल्मी.रा.में देखिये—'पुत्रत्वं तु गते विष्णौ राज्ञस्तस्य महात्मनः। उवाच देवताः सर्वाः स्वयम्भूर्भगवान् इदम्' (बाल. १७।१) (जब विष्णु भगवान्ने दाशरथि बनना स्वीकार किया; तब ब्रह्माने सब देवताओंको

कहा) 'विष्णोः सहायान् बलिनः सृजध्वं कामरूपिणः (२) मायाविदश्च शूरांश्च वायुवेगसमान् जवे। नयज्ञान् बुद्धिसम्पन्नान् विष्णुतुल्यपराक्रमान् (३)। असंहार्यान उपायज्ञान् दिव्यसंहननान्वितान। सर्वास्त्रगुणसम्पन्नान अमृतप्राशनानिव (४) 'अप्सरःसु च मुख्यासु गन्धर्वीणां तनूषु च। यक्षपन्नगकन्यासु ऋक्षविद्याधरीषु च (५) किन्नरीणां च गात्रेषु वानरीणां तनूषु च। सृजध्वं हरि (वानर) रूपेण पुत्रान् तुल्यपराक्रमान् (६) (तुम देवता लोग देवस्त्रियां गन्धर्वी, यक्षिणी, वानरी, किन्नरी आदि अप्सराओंसे बन्दर रूपमें दिव्य शरीरवाले अतुल-बलशाली पुत्रोंको पैदा करो)।

'पूर्वमेव मया सृष्टो जाम्बवान् ऋक्षपुङ्गवः। जृम्भमाणस्य सहसा मम वक्त्रादजायत (७) वानरेन्द्रं महेन्द्राभम् इन्द्रो वालिनमात्मजम्। सुग्रीवं जनयामास तपनः तपतां वरः (१०) (जाम्बवान्-ऋक्षकी ब्रह्माके मुखसे, तथा इन्द्रसे बाली तथा सूर्यदेवसे सुग्रीवकी उत्पत्ति हुई)। बृहस्पतिस्तु'···तारं नाम महाकपिम् (११) 'विश्वकर्मा त्वजनयद् नलं नाम महाकपिम्' (देवशिल्पी विश्वकर्मासे नल वानर पैदा हुआ; इसी कारण अपने पतृक गुण शिल्पके कारण उसने समुद्रकी पुल बनाई)। 'वरुणो जनयामास सुषेणं नाम वानरम् (१७।१५)। मानुषं रूप मास्थाय विष्णुः सत्यपराक्रमः। सर्वैः परिवृतो देवैर्वानरत्वमुपागतैः' (६।११३।१३-१४) (विष्णु भगवान्ने मानुषरूप (रामावतार) बनाया। देवता सब वानररूप बना कर उनके पास ठहरे) वानराश्च

स्विकां योनिम् ऋक्षाश्चैव तथा वपुः। येभ्यो विनिःसृताः सर्वे सुरेभ्यः सुरसम्भवाः। तेषु प्रविविशे चैव सुग्रीवः सूर्यमण्डलम्' (वाल्मी० ७।११०।२०-२१) (वानर-रीछ जिस-जिस देवतासे उत्पन्न हुए थे; अन्तमें उसीमें प्रवेश कर गये)।

इस उपक्रम-उपसंहार तथा अभ्यास, अपूर्वता, फल आदि तात्पर्य-निर्णायक लिङ्गोंसे वानरोंका देवतावतार होना स्पष्ट है; तभी 'आत्मा वै पुत्रनामासि' (मन्त्रब्राह्मण १।५।१६-१६, गोभिलगृ. २।८।२१-२५ हनुमानादि वानर पृ. १०६) इस वेद-वचन द्वारा उनमें भी लोकोत्तर दिव्य बल था, क्योंकि—देव-योनिवाला व्यक्ति जिस भी रूपमें अवतीर्ण हो; पर अपने बलको नहीं छोड़ता। नाटकमें पुरुष यदि स्त्री बने; तब भी उनमें पुरुषवाला बल रह ही जाता है। देवावतार होनेसे ही हनुमानादि वेदवेदाङ्गोंके विद्वान् थे; क्योंकि—'विद्वांसो हि देवाः' (शत. ३।७।३।१०) अर्थात् देवता जन्मसे ही विद्वान् होते हैं। इसकी स्पष्टता 'आलोक' (४) में की गई है। इससे अब वानर होनेपर भी देवांशके अक्षत होनेसे हनुमान् आदिका वेद-वेदाङ्गोंमें पाण्डित्य दिखलाया गया है। तब स्त्री-रूपधारी पुरुष-नटकी भांति, देवावतार-वानर भी दैवी बलको कैसे छोड़ें ? तभी तो कामरूप (अपनी इच्छानुसार रूप बना सकनेवाले) थे।

'मारुतस्यौरसः श्रीमान् हनुमान् नाम वानरः। यश्च संहननोपेतो वैनतेयसमो जवे' (१।१७।१६) सर्ववानरमुख्येषु

बुद्धिमान् बलवानपि' (१७) (यहाँ हनुमानके बल-बुद्धिका परिचय दिया गया है। अन्य बन्दरोंका बलवृत्त यह है–) 'अप्रमेय-बला वीरा विक्रान्ताः कामरूपिणः। ते गजाचलसंकाशाः वपुष्मन्तो महाबलाः (१८) ऋक्षवानरगोपुच्छाः क्षिप्रमेवाभिजज्ञिरे। यस्य देवस्य यद् रूपं वेषो यश्च पराक्रमः (१६) अजायत समं तेन, तस्य-तस्य पृथक्-पृथक्। गोलाङ्गूलेषु चोत्पन्नाः केचिद् उन्नतविक्रमाः (२०) ऋक्षीषु च तथा जाता वानराः किन्नरीषु च (२१) चारणाश्च सुतान् वीरान ससृजुर्वनचारिणः। वानरान् सुमहाकायान् सर्वान् वै वनचारिणः (२४) सिंहशार्दूलसदृशा दर्पेण च बलेन च। शिलाप्रहरणाः सर्वे-सर्वे पर्वतयोधिनः' (२५) नखदंष्ट्रायुधाः सर्वे, सर्वे सर्वास्त्रकोविदाः। विचालयेयुः शैलेन्द्रान् भेदयेयुः स्थिरान् द्रुमान्' (२६) इनमें कई पद्य हम पहले दे चुके हैं, और उनका अर्थ भी कर चुके हैं। यहाँपर सब पद्योंका संग्रह कर दिया गया है। इससे श्रीरामके सहायक हनुमान् तथा अन्योंको स्पष्टतया बन्दर, देवावतार और अलौकिक-बलशाली बताया गया है। शेष पद्य निम्न हैं, जो उनका अलौकिक बल बताते हैं–

'क्षोभयेयुश्च वेगेन समुद्रं सरितां पतिम्। दारयेयुः क्षितिं पद्भ्याम् आप्लवेयुर्महार्णवान्' (२७) नभस्तलं विशेयुश्च गृह्णीयुरपि तोयदान्। गृह्णीयुरपि मातङ्गान मत्तान् प्रव्रजतो वने' (२८) नदमानाँश्च नादेन पातयेयुर्विहङ्गमान्। ईदृशानि प्रसूतानि हरीणां कामरूपिणाम्। (२६) शतं शतसहस्राणि यूथपानां महात्मनाम्।

ते प्रधानेषु यूथेषु हरीणां हरियूथपाः (३०) बभूवुर्यूथपश्रेष्ठान् वीरॉंश्चाजनयन् हरीन्' (बालकाण्ड १७।३१)। युद्धकाण्डमें भी उन वानरोंकी देव, गन्धर्व आदिमें उत्पत्ति बताई गई है—हरयो देवगन्धर्वैरुत्पन्नाः कामरूपिणः' (२८।५) 'किष्किन्धाकाण्डमें भी कहा है—'देवगन्धर्वपुत्राश्च वानराः कामरूपिणः' (३८,२६)। युद्धकाण्डमें भी यही स्पष्ट है (६।११३।१४) 'सर्वैः परिवृतो देवैर्वानरत्वमुपागतैः' (१५)। यदि प्रतिपत्तियोंको वानरोंकी देवोंसे उत्पत्ति और देवोंकी मनुष्यसे भिन्न योनि और लोकोत्तर दिव्यशक्तिशालिता समझमें आ जावे, तो उन्हें कोई भी दीर्घ वा लघुशङ्का तंग न कर सके।

आर्यपथिकने (पृ. ६५) में लिखा है—'इतने गुणोंसे युक्त तो बन्दर क्या, सर्वसाधारण मनुष्य भी नहीं होते हैं'। सो मनुष्य-भिन्न देवयोनि—जिसके यह वानर अवतार थे—वादी रामायणकी भांति मान ले, तब उसको कोई भी इस विषयकी शंका भ्रान्त न कर सके। श्रीवाल्मीकिका स्वाभाविक अभिप्राय छिपानेसे काम नहीं चलेगा। 'सुरैर्हि सृष्टाः' (७।३६।४६) यहाँ वानरोंकी देवताओं द्वारा सृष्टि 'देवैर्वानरत्वमुपागतैः' (६।११३।१५) तथा देवताओंका वानररूप धारण करना श्रीवाल्मीकिमुनिने कहा है। पूर्ववचनका 'सुग्रीव आदिको विद्वानोंने विद्वान् बताया है' (पृ. ७६) यह आर्यपथिकका अर्थ ठीक नहीं। असङ्गत है। 'सुर'का अर्थ 'देवयोनि' है, 'विद्वान् मनुष्य' नहीं।

पूर्व लिखित श्लोकोंसे स्पष्ट है कि—वे साधारण आजकलके

से वानर नहीं थे। तभी तो श्रीसीताने भी हनूमानको कहा था—'न हि त्वां प्राकृतं (साधारणं) मन्ये वानरं वानरर्षभ ! यस्य ते नास्ति संत्रासो रावणान्नापि सम्भ्रमः' (सुं. ३६।६) यहाँ हनुमान्को साधारण वानरोंसे विलक्षण बानर कहा गया है। 'प्राकृतोऽन्यः कथं चेमां भूमिमागन्तुमर्हति। उदधेरप्रमेयस्य पारं वानरपुङ्गव !' (५।३७।४१) अर्थात् इस अपार समुद्रको साधारण वानर भला पार कैसे कर सकता है ? इस प्रकार हनूमान् अप्राकृत वानर सिद्ध होते हैं। पहले श्रीसीताने भी उसे प्राकृत वानर समझा था—'हनूमन्तं कपिं व्यक्तं मन्यते नान्यथेति सा' (५।३५।८७) पीछे उसकी शक्तिका परिचय पाकर उसे अप्राकृत वानर माना।

(४४) इस प्रकार प्राकृत (साधारण) वानरोंने भी हनुमान्को साधारण (प्राकृत) वानर समझकर अपनी जातिके स्वभावानुसार जब हनुमान् विशल्यकरणी आदि ओषधियोंवाला पहाड़ लाने गया था, उस समय स्वयं भी उछलनेका यत्न किया; पर वे गिर गये। जैसे कि—'स वृक्षखण्डान् तरसा जहार, शैलान् शिलाः प्राकृतवानरांश्च। बाहूरुवेगोद्धतसम्प्रणुन्नाः ते (प्राकृत वानराः) क्षीणवेगाः सलिले निपेतुः' (युद्ध. ७४।४६)। इससे हनूमान् अप्राकृत (दिव्य) वानर सिद्ध हुए। यदि हनुमान् बन्दर न होते; मनुष्य होते; तब अन्य बन्दर अपनी जातिके स्वभावानुसार उसके पीछे न कूदते; क्योंकि—उनका एक मनुष्यके साथ उछलनेका कुछ भी सम्बन्ध नहीं था। इससे वे भी बन्दर ही थे; पर

हनुमानादि विशेष दिव्य वानर सिद्ध हुए। वहीं पर ही हनुमानका 'स पुच्छमुद्यम्य भुजङ्गकल्पं विनम्य पृष्ठं श्रवणे निकुञ्च्य। विवृत्य वक्त्रं...आपुप्लुवे व्योम्नि स चण्डवेगः' (६।७४।४५) पूछ उठाना, पीठको झुकाना, कानोंको सिकोड़ना, आकाशमें उछलना कहा है, यह मनुष्योंमें नहीं हो सकता। दिव्य वानरोंमें ही हो सकता है। इस प्रकार देवावतार अन्य बन्दर भी ऐसे थे। वे कामरूप होनेसे मनुष्यरूप भी धारण कर सकते थे, इसलिए वे मनुष्य-शास्त्रके बन्धनमें भी कुछ आ सकते थे, परन्तु युद्धमें श्रीरामने उनके मनुष्यशरीरधारणका निषेध कर दिया था। जैसे कि—

'न चैव मानुषं रूपं कार्यं हरिभिराहवे। एषा भवतु नः संज्ञा युद्धेस्मिन् वानरे बले। वानरा एव वश्चिह्नं स्वजनेस्मिन् भविष्यति। वयं तु (रामलक्ष्मणादयः) मानुषेणैव [रूपेण] सप्त योत्स्यामहे परान् (६।३७।३३-३४) यहाँपर रामाभिरामने लिखा है—'अथ वानराणामपि कामरूपतया रूपान्तरकरणे युद्धे स्वीय-परकीयविवेकाऽसम्भवाद् आह—'न चैवेति। संज्ञा—नित्यवानररूप-धारणसंकेतः। एवञ्च अस्मान् सप्त हित्वा—मन्त्रिचतुष्टयसहितं विभीषणं च त्यक्त्वा मनुष्याकारो निःशङ्कं वध्यः। वानररूप-धारी वानरैर्युध्यते; तदा वध्य एव। वो युष्माकं स्वजने-स्वजनत्व-ज्ञाने वानरा एव—वानरत्वविशिष्टा एव चिह्नं, तद्वैशिष्ट्यमेव चिन्हमित्यर्थः'। (हम सात आदमियोंके अतिरिक्त कोई भी बन्दर युद्धमें मनुष्यरूप न बनावे) इससे स्पष्ट सिद्ध होता है

कि-वानर वानराकृति ही थे, प्रतिपक्षियोंके अनुसार मनुष्य नहीं थे, न मनुष्याकृतिके थे। हाँ, कामरूप होनेसे मनुष्य रूप धारण कर सकते थे, पर उसका निषेध किया गया। यदि प्रतिपक्षियोंके अनुसार वानर मनुष्य ही थे, तब उनके मनुष्य रूपका निषेध व्यर्थ ही ठहरता है। केवल कपड़े पहननेके भेदसे नर-वानरका भेद कभी नहीं हो सकता। इससे प्रतिपक्षियोंका इस विषयका पक्ष कट गया।

(४५) इस प्रकार जब देवावतार होनेसे रामायणके वानरोंकी विशेषता सिद्ध हुई; तब उनमें ऐसा कार्य कौनसा अवशिष्ट रहा; जो असम्भव हो? जब ऐसा है, तब वानरयोनिसे जबर्दस्ती उनकी मनुष्ययोनि सिद्ध करनेकी तथा वास्तविकताको छिपानेकी क्या आवश्यकता? वस्तुतः यहाँ दोष प्रच्छन्न-बौद्धोंकी संकुचित तथा पक्षपात-कलुषित बुद्धिका है, जिसने ठीक सङ्गति लग रही होने पर भी असङ्गतिका शोर मचा रखा है। वे लोग इस मार्गको जानते अवश्य हैं, पर उसे छिपाते हैं। उसमें भी रहस्य है। वह यह कि-देवयोनि मान लेनेसे फिर उनके नेताओंके साम्प्रदायिक सिद्धान्तमें क्षति पड़ती है, क्योंकि-उनके नेता देवयोनिको नहीं मानते; न ही उसमें अलौकिक सामर्थ्य मानते मानते हैं। देवयोनि मान लेने पर उनको अपना सारा साहित्य बदल लेना पड़ेगा। परन्तु देवयोनि शास्त्रीय एवं वैदिक है। उसका कुछ विवरण हम 'आलोक' (४)में कर चुके हैं, शेष अन्य पुष्पोंमें करेंगे, उसमें उनकी अलौकिक शक्ति भी दिखलाई जायगी।

प्रत्यक्षदेव सूर्य आदिको ही देख लीजिये, जिनको उनके नेता भी देवता मानते हैं। उनमें कितना बल है, कितनी सामर्थ्य है? एक ही अग्निदेव हजारों मन भार उठाकर ट्रेन रूपमें दौड़ता दीखता है। एक ही सूर्यसे सारी पृथिवी अपनी शक्तिसे नियन्त्रित है। उसी कारणसे यह पृथ्वी आकाशमें स्थिर भी, नवीन-मतानुसार घूम रही भी, निराधार होती हुई भी नहीं गिरती। एक ही विद्युत्-रूपमें इन्द्रदेव संसारमें कितने कार्य पूर्ण कर रहा है। रोटी आदि बना रहा है। पंखा चला रहा है। चक्की चला रहा है, कपड़े प्रेस कर रहा है। शरीरमें बल बढ़ा रहा है। ट्रेनें चला रहा है। रेडियो, टेलीप्रिन्टर, टेलिविज़न, टेलीफोन, टेलीग्राम आदिका कार्य कर रहा है।

देवोंमें कामरूपता भी जन्म-सिद्ध है; तब देवांश रामायणके वानर भी कभी मनुष्यका, कभी बिलावका, कभी हाथी वा पर्वत आदिका रूप भी बनानेमें समर्थ थे। इसीलिए 'मानुषं धारयन् रूपम् अयोध्यां त्वरितं ययौ। अथोत्पपात वेगेन हनूमान् मारुतात्मजः' (६।१२५।१६-२०) यहां हनूमान्‌का मनुष्यरूप धारण करना और उडना बताया है। यदि हनूमान् मनुष्य होते; तब वे अन्य मनुष्य-रूप कौनसा धारण करते।

इसी प्रकार 'ते कृत्वा मानुषं रूपं वानराः कामरूपिणः' (युद्ध. १३०।४३) यहाँ शरभ, पनस आदि वानरोंका कामरूपता-वश मनुष्यरूप धारण करना दिखलाया है। यदि वे पहलेसे ही मनुष्य थे, तो फिर उन्होंने अन्य कौनसा मनुष्य-रूप धारण

किया? तब तो उनका 'कामरूपिणः' विशेषण भी असाभिप्राय हो जायगा; परन्तु वास्तविक बन्दर होनेपर भी फिर मनुष्यादि भिन्न योनिका रूप बनानेपर उनका 'कामरूपिणः' यह विशेषण साभिप्राय हो जाता है। यदि या वे बन्दर थे, और मनुष्यकी भांति कपड़े पहिनें, इससे भी उनकी मनुष्यता नहीं बन जाती, क्योंकि-वादी भी मानता है कि-कपड़े पहननेपर भी बन्दरका बन्दरपन छिप नहीं सकता।

इससे सिद्ध है कि-हनुमानादि मनुष्य नहीं थे; किन्तु वानर (बन्दर) थे। साधारण बन्दर भी नहीं थे; किन्तु देवांश, बल्कि देवताओंसे सीधे आये हुए विशेष वानर थे। हम 'रामायणकी राजनीति' (पृ. ११२) के अनुसार यह भी माननेको तैयार नहीं कि-'वानर एक वनेचर जाति थी। दक्षिण दिशाके जंगलोंमें इसका निवास था। इसकी सुन्दर राज्य-व्यवस्था थी. पढ़ने-पढ़ानेकी चाल थी। यह सब कुछ होने पर भी बहुत-सी बातें इन लोगोंमें जंगलीपनकी मौजूद थीं। यद्यपि यह प्रकृत जाति प्राचीनरूपमें आज नहीं दीखती; परन्तु यह सम्भव है कि-दक्षिण देशकी रहनेवाली अनेक जातियाँ इन्हीं रीछ-बन्दरोंकी सन्तान हों।'

वस्तुतः यह मत वाल्मीकि-रामायण एवं महाभारतसे विरुद्ध है। केवल यह मत कुछ दिमाग-फिरे सुधारकोंको प्रसन्न करनेकेलिए गढ़ा गया है। अस्तु! कामरूपता होनेसे हनुमान्‌का 'ह्रस्वतां गतः' (५।२।४४) छोटा रूप तथा बिलावका रूप

बनाना भी दिखलाया है-'सूर्ये चास्तं गते रात्रौ देहं संक्षिप्य मारुतिः। वृषदंशक (बिडाल) मात्रोथ बभूवाद्भुतदर्शनः' (सुन्दर. २।४७) वनवासी मनुष्य अपने शरीरको छोटा-बड़ा करने वा बिलाव बननेमें समर्थ नहीं होते; 'स संक्षिप्यात्मनः कायं···बभूवाङ्गुष्ठमात्रकः' (सुं. ३।५६) यहां हनुमान्का अंगूठे-इतना रूप धारण कर लेना कहा है। परन्तु देवावतार वानरोंमें स्वभावसिद्ध अणिमा आदि अष्टसिद्धि अपने वश होनेसे वह शक्ति थी। रङ्गमञ्चमें नट स्त्रीरूप धारण करके भी अपने पुरुषत्व वा वैसे बलको भी नहीं छोड़ दिया करता, वैसे देवता वानर-योनिको पाकर भी अपनी दिव्यता वा शक्ति-विशेषको भला क्यों छोड़ दें ?

(४६) 'ज्येष्ठो हि त्वं तु सम्पाते ! जटायुरनुजस्तव। मानुषं रूपमास्थायाऽगृह्णीतां चरणौ मम' (कि. ६०।२०) यहाँ जटायु तथा उसके भ्राता सम्पातिके गीध-पक्षी होनेपर भी कामरूप (इच्छानुसारी शरीर-निर्माणमें समर्थ) होनेसे मनुष्य-शरीर धारणमें शक्ति थी। यदि वे मनुष्य होते, तो फिर उन्होंने कौनसा अन्य मनुष्यरूप धारण किया ? इसी प्रकार जाम्बवानके भी कामरूप होनेसे उसने अपनी कन्या जाम्बवतीको भी मानुषी रूपमें करके उसका श्रीकृष्णसे विवाह कर दिया।

इससे सिद्ध हुआ कि-देवतावतार होनेसे ही रामायणके वानर, रीछ एवं गीधोंमें बड़ी शक्ति थी। 'माहाभाग्याद् देवतायाः' (निरुक्त. ७।४।८) देवताओंमें अणिमा आदि ऐश्वर्य होता है, अतः वे कई प्रकारके रूप बना लिया करते हैं। 'यद्

यद् रूपं कामयते, तत्तद् देवता भवति-'रूपं रूपं मघवा बोभवीति' (निरु. १०।१७।१) तब दूसरी योनिका रूप ग्रहण करनेपर भी उसकी स्वाभाविक अपनी शक्ति नष्ट वा कुण्ठित नहीं हो जाती। इसीलिए देवावतार हनुमान् वानर होनेपर भी विद्वान बताये गये हैं; क्योंकि-देवता जन्मसे ही विद्वान् हुआ करते हैं-'विद्वांसो हि देवाः' (शत. ३।७।३।१०) पर यह अदूरदर्शियों वा साम्प्रदायिकोंकी समझमें नहीं आता; अतः वे बलात् उन्हें मनुष्य बताते हैं। दमयन्तीको हँसने नलके विषयमें मधुर वाणीसे प्रेरित किया था; तब क्या उस दिव्य पक्षीको मनुष्य बना दिया जावेगा? इस प्रकार दिव्य होनेसे वानरोंमें भी मनुष्य-सदृशता, मनुष्योंवाले व्यवहार जिन्हें वादी उपक्षिप्त करते हैं-ब्राह्मणभोजनादि, दही बनाना, कपड़े आदि पहनना, सभी उपपन्न हो जाते हैं।

इसी प्रकार पुराणोंमें भी जो कि कई सर्पोंका मनुष्याकार भी दीखता है, वहाँ देवांश होना कारण रहा करता है। सभी सांप-वानरादिको हम भी मनुष्यसदृश वा वैसी शक्तिवाले नहीं बताते; किन्तु देवांश, देवावतार वा दिव्य पशुपक्षियोंको ही वैसा बताते हैं। इस प्रकार उनकी स्त्रियां तथा गरुड़, जटायु आदि पक्षियोंकी भी दिव्यता होनेसे उनके अलौकिक व्यवहार बताये गये हैं। इसी कारण ही दिव्यतावश अर्जुन आदिका मनुष्याकृति नागकन्याओंसे, श्रीकृष्णका ऋक्षकन्या-जाम्बवतीसे विवाह भी आया है। इसी कामरूपतासे वानर-कन्याओं—

रुमा, तारा आदिकी यदि पूंछ नहीं भी दिखलाई गई; उनका सुरा आदिका सेवन जो बताया जाता है वह भी उपपन्न हो जाता है। यह तो देवांश वानरादि हुए, विष्णु आदि भी जिन्हें परमात्मा माना जाता है और बन्धनरहित भी दिव्यतावश वे जब मनुष्य रामादिरूपमें॰ अवतीर्ण हो जाते हैं; तब वे भी मानुषी व्यवहार करते हैं; कुछ बन्धनमें आते ही हैं। तभी

॰जो लोग कहते हैं कि—वाल्मीकिरामायणमें राम विष्णुभगवान्के अवतार नहीं बतलाये गये; वे तो अपने-आपको मनुष्य कहते हैं—'आत्मानं मानुषं मन्ये' (वाल्मी० ६।११९।११) इसपर यह जानना चाहिये कि—यह वचन तो उनकी मर्यादापुरुषोत्तमताको बता रहा है; नहीं तो मनुष्यका अपने-आपको मनुष्य कहना क्या अर्थ रखता है? वे आकृतिमें गाय-भैंस तो लग नहीं रहे थे। वाल्मी.में तो श्रीरामका विष्णुका अवतार होना, आदिसे लेकर अन्त तक व्याप्त है। यह हम इस निबन्धमें वाल्मीकिके वचन द्वारा भी संकेतित कर चुके हैं। अन्य पद्योंकी कुछ सूची देते हैं—१।१५।१९-२१-२२ १।७६।१७, २।१।७, ६।११३।११-१२-१३, ११९।१३, ७।१७।३५, ९८।१३, १०४।१५, ११०।१३ इत्यादि। महर्षि भारद्वाजने अपने आश्रममें आये भरतको भी यह संकेत किया था। चित्रकूटमें भी भरतके रामके लौटानेके अधिक आग्रहमें बीचमें बोलते हुए राक्षसवधाकाङ्क्षी ऋषि-मुनि-देवोंका इस रहस्यमें पूर्ण संकेत किया गया है। युद्धकाण्डमें बहुत स्थलोंमें रामका अलौकिक भाव प्रकट किया गया है। खर-दूषणके वधके बाद अगस्त्य ऋषिने भी यही संकेत किया था। रावणके मरनेके बाद मन्दोदरीने भी यही संकेत किया था। तब रामायणमें रामके अवतारकी कथाको कई संशयालुओं द्वारा प्रक्षिप्त मानना असङ्गत ही है।

श्रीबलरामने सूतवधके प्रायश्चित्तमें तीर्थयात्रा की। इसी प्रकार जब वे वानरादि भी मानुषी वाणी वा मानुषी ज्ञान रखते थे; तब कुछ-कुछ मानुषी शास्त्रके बन्धनमें आते हैं। दिव्यता भी साथ होनेसे अलौकिक (लोकोत्तर:कभी लोकविरुद्ध) कर्म भी वे कर डालते हैं; तब देवांश वानर-रीछ-गीध आदिका क्या कहना? तब दैत्य भी महिषासुर आदि बन जाते हैं, राजा भी बनते हैं; प्रजापर शासन वा नियन्त्रण भी करते हैं।

यदि देवांश उन वानरोंने नगरियां भी बना रखी थीं; आदर्श मन्त्री एवं राजदूत भी उनके थे, धर्मशास्त्र वा कर्मकाण्ड भी यदि वे जानते थे; यदि अन्त्येष्टि क्रिया तथा सव्यापसव्य भी करते थे, जो कि अधिकारियोंका उपनयन-सूत्रसे तथा अनधिकारियोंका गोभिल आदिके अनुसार केवल वस्त्रके बाएँ-दाहने कन्धे पर करनेसे हो जाता है। इसमें असम्भव कुछ भी नहीं रह जाता। हाँ, इनकी आकृति प्रायः वानरादिकी रहती है, पर अप्राकृततावश उसमें मानुषी-पुट तथा देव-पुट भी रहता है। जिस पुस्तकमें जैसा वृत्त हो; उसकी तदुल्लिखित व्यवस्था भी माननी ही पड़ती है। श्रीवाल्मीकिने आजकलके साधारण (प्राकृत) वानरोंकी यह घटना नहीं दिखलाई, जिससे उसमें असङ्गति प्रवृत्त हो, किन्तु देवावतारोंकी। देवताओंकी शक्ति उच्च-योनि होनेसे लोकोत्तर ही होती है, उनकी शक्तिको प्रतिपक्षी अपनी शक्तिसे न तोलें। तभी वानरोंके लिए कहा है—

'कुलेषु जाताः सर्वस्मिन् विस्तीर्णेषु महत्सु [देवसम्बन्धिषु] च।

क्व गच्छत भयत्रस्ताः प्राकृता हरयो यथा '(६।६२।२१) (तुम उच्च देवकुलोंमें पैदा होकर साधारण बन्दरोंकी भांति डरसे क्यों भागे जा रहे हो ? इस प्रकार विचार-चक्षु लगाकर और पक्ष-पातका काला चश्मा उतारकर वादी जब देखेंगे; तब कोई भी शंका उन्हें अविश्वासके गढ़ेमें गिरने नहीं देगी। आशा है—वे आग्रहवाद छोड़कर वास्तविकताके अनुसन्धानमें लग जावेंगे। इस प्रकार श्रीवाल्मीकिके वचनोंके उपन्याससे तथा वादियोंके तर्कोंके उच्छेदसे सिद्ध होगया कि—हनुमानादि असाधारण वानर थे। मनुष्य वा वनवासी अथवा वानरनामक क्षत्रिय-जातिवाले मनुष्य नहीं थे। इस विषयमें पहले युक्ति-विशारद श्री पं० कालूरामजी शास्त्रीने आवाज़ उठाई थी। फिर श्री डा. ला. शान्तिजीने। उनका अनुवर्तन करके हमने भी इस विषयमें यह महाभाष्य किया है।

(४७) हम इस निबन्धमें 'क्या रामसेना बन्दर थी ?' तथा 'हनुमान आदि वानर बन्दर थे, या मनुष्य' इन दो पुस्तकोंकी आलोचना कर चुके। उनके प्रायः सभी तर्क-प्रमाणों पर विचार किया जा चुका है। वे आजकलके साधारण बन्दर नहीं थे, किन्तु देवावतार विशेष (अप्राकृत) वानर थे। आकृति वानरोंकी, चेष्टायें भी उन्हींकी, पर बल, ज्ञान एवं व्यवहार मनुष्यसे उच्च देवताओंका। 'शाखान्तरे लीनं' (सुं. ३२।१) आदिसे उनकी वानर-प्रकृति भी स्पष्ट है, जिसे पूर्व दिखाया जा चुका है। कई अवशिष्ट आपत्तियों पर यहाँ बिना उनका

उद्धरण दिये संक्षेपसे समाधान दिया जा रहा है।

(४८) 'मन्त्रविदु विजयैषिणी' (४।१६।१२) यहाँ विजयकी इच्छुका ताराका 'मन्त्र' विचार अर्थवाला है। 'सानुगाय इन्द्राय नमः' आदि वेदभिन्न भी मन्त्र कहे जाते हैं। अथवा 'वेदमन्त्र' अर्थ भी हो; तो 'देवांशत्वात् स्वस्त्ययनमन्त्रवेत्री' (रामाभिराम) आदि जान लेना चाहिये कि—देवावतार होनेसे वे उन मन्त्रोंको बिना पढ़े स्वतः ही जानती थीं। जबकि—सन्त ज्ञानेश्वरने भसेके सिर पर हाथ रखा, तो वह भैंसा भी वेदमन्त्र बोलने लग गया था, तो देवांश वानरोंका तो कहना ही क्या?

(४९) जब बन्दरोंका भी भवन बना हुआ हो; तब वे उसीमें रहते हैं, फिर वृक्षोंकी शाखापर क्यों रहें? ऐसा वर्णन बाली-सुग्रीव, हनुमान्-अङ्गद आदि विशेष थोड़ेसे राजारूप वानरोंका आया है; सभी रामायणस्थ वानरोंका नहीं। 'इमां गिरिगुहां रम्यां' (कि. २६।७) 'तस्य तु शैलस्य महती शोभते गुहा' (कि. ७३।३६) (कि. ३३।४) इस प्रकार अन्य भी बहुतसे पद्योंमें पहाड़ी गुफाका वर्णन आया है; वहां निवास होनेसे वानरोंका नगर उसे कह दिया जाता है। वह जंगलमें था, जहाँ बहुत-से वृक्ष थे' (कि. ३३।५) इससे उनकी वानरता स्पष्ट है। 'वने त्रस्तौ' (कि. ५।२३) यहाँ वनमें एक किलेरूप खोहमें रहना लिखा है।

(५०) 'शुक्लैः प्रासादशिखरैः' (४।३३।१५)के 'शुक्ल'का अर्थ 'चूने-कलईसे पोते जाना' वादीकी अपनी कल्पना है, 'सुधा' शब्द साथ नहीं है। सुफेदी स्वाभाविक भी हो सकती है।

(५१) बाली-सुग्रीव आदिके राज्याभिषेक आदि इन्द्र-सूर्य देवोंके अंशसे उत्पत्तिवश राजा होनेके कारण दिखलाये गये हैं। (५२) 'विधिवत् अन्त्येष्टि' पर रामाभिरामने लिखा है-'देवांशत्वेन स्वयं ज्ञातवेदत्वात् तिर्यग्देहोचित-विधिवद्' (४।२।५०) आरूढपतित पशुदेहकेलिए जो विधि होती है, तदनुसार यह अन्त्येष्टि है। अपसव्यता वस्त्र (अंगोछे) के दाहिने कन्धे पर रखनेसे भी होती है-यह गोभिलगृह्यसूत्र आदिमें स्पष्ट है। द्विजोंसे भिन्नोंका यह हो सकता है, इस विषयमें 'आलोक'* (३) में देखना चाहिये।

(५३) अज्ञ वानरियोंका रुदन अपने बच्चे आदिके मर जानेपर अब भी होता है। अभिज्ञ वानरियों (देवतावतारों) के लिए तो क्या कहना? (५४) 'उदकं कर्तुं' (कि. २५।५१) का 'जलसे मृतकका तर्पण' अर्थ है, स्नान नहीं। सो अभिज्ञ देवावतार जो मनुष्यलोकमें आये हुए हैं, उनकेलिए कोई आश्चर्य नहीं। स्नान तो साधारण बन्दर भी तालाबोंमें अथवा वर्षा होनेपर गढ़ोंमें छलांगें लगाकर अब भी करते रहते हैं। (५५) 'पर्वतेन्द्रं समाश्रिताः' (४।२।१२) 'वानरेण मया सह' (४।५।१०) 'वने त्रस्तो' (४।५।२-३) इत्यादि लिङ्गोंसे उनकी वानरयोनिता स्पष्ट है। (५६) 'सन्ध्योपासनतत्परम्' (७।३४।१२) 'जपन् वै नैगमान् मन्त्रान्' (१८) 'सन्ध्याकालमवन्दत' (२७)

---

*'आलोक' तृतीय पुष्प समाप्त हो चुका है, समय पाकर उसकी द्वितीयावृत्ति होगी।

यहाँ सन्ध्याकालको उसका नमस्कार बताया गया है, जैसे कि-दूकानदार अब भी सायंके दीये जलनेपर उस समय हाथ जोड़ देते हैं, यह सन्ध्याकालको नमस्कार होता है। नैगम (वैदिक) मन्त्रोंका मनुष्यलोकमें आये देवावतार वानरोंकेलिए कोई आश्चर्य नहीं। वे तो उन्हें जन्मसे ही प्रतिभात होते हैं। तभी प्राचीन टीकाकार रामाभिरामने लिखा है-'वाल्यादयो हि स्वयं प्रतिभातसकलवेदाः' (१८) स्वयं प्रतिभातता देवावतार होनेके कारण है। (५६) 'क्षत्रियोऽहं कुलोद्भवः' (४।१८।२२) 'मैं कुलसे भी और गुण कर्म-स्वभावसे भी क्षत्रिय हूँ' (पृ. ८९) यहां 'गुणकर्मानुसार' शब्दका वादी द्वारा अर्थमें प्रक्षेप 'आर्यसमाजी-पन' है।

(५७) 'वानरोंकेलिए धर्मशास्त्र-प्रमाणके विषयमें रामाभिराम (तिलक) टीकाकार पहलेसे समाधान कर चुके हैं, इससे वादीकी अनेक आपत्तियोंका समाधान होगा। वे लिखते हैं-'न च मनुष्याधिकारस्य निषेधादिशास्त्रस्य कथं तिर्यक्षु (पशु-पक्षिषु) प्रवृत्तिरिति वाच्यम्, तिर्यग्योनेरपि मनुष्यवत् राजादिव्यवहार-दर्शनेन मनुष्यतुल्यज्ञानवत्त्वाद् अस्त्येवाऽयं [अनुजपत्नीगमनरूपः] दोषः। किञ्च-धर्मेऽनधिकारिणामपि इन्द्रादीनां वृत्रवधादौ ब्रह्महत्यादिदोषस्मरणेन, निषेधेषु तदतिक्रम-प्रायश्चित्तादौ च देवानामधिकारवद् एषामपि अधिकारे बाधकाऽभावः।...... तद्वद् ईदृशानां ज्ञानवतां तिरश्चाम् (पशुपक्षिणाम्) अधिकारे बाधकाऽभावः।...अत एव गृध्रराजस्य भगवता दाहादि कृतम्।

अग्रे च सम्पातिना तद्भ्रात्रा करिष्यमाणमुदकदानादि नाऽसङ्गतम् इति दिक्'।

इसका निष्कर्ष यह है कि—जो देवादिसे आये हुए आरूढ-पतित* पशु-पक्षी भी मनुष्यके सदृश ज्ञान रखते हैं, उनका भी मनुष्याधिकार वाले शास्त्रका यदि कहीं आचरण दीखे, तो उसमें कोई बाधक नहीं। इससे बाली आदिकी प्रत्यक्ष दीख रही वानरयोनिताको छिपाया नहीं जा सकता। तभी श्रीरामने बालीको कहा था कि—'यस्मात् शाखामृगो ह्यसि' (४।१८।४१) तुम बन्दर हो, तुम्हें मैंने दण्ड दिया है, तुमसे युद्ध नहीं किया।

(५८) 'क्या वानरोंकी माताएँ बन्दरी थीं' (पृ. ६४) इस विषयमें पूर्व विचार कर चुके हैं। हनुमानकी माता अञ्जना केसरी वानरकी स्त्री (४।६६।८) स्वयं वानरी परन्तु कामरूपिणी (६) वानरेन्द्रकी लड़की (१०) थी। वह मनुष्यरूप बना लिया करती थी। कई अप्सराएँ वानराकृति वाली थीं, कई ऋक्षाकृति की, कई किन्नरियाँ (अश्वमुख वाली) थीं। अप्सरा देवस्त्रियाँ होती हैं—'ताभ्यो गन्धर्वपत्नीभ्योऽप्सराभ्योऽकरं नमः' (अ. २।२।५) यहाँ वेदमें भी अप्सराओंको देवविशेष गन्धर्वोंकी पत्नी कहकर उनको नमस्कार की गई है। जो अन्य आकृति वाली भी अप्सराएँ थीं, तथापि यहाँ ब्रह्माजीका आदेश था—'हरिरूपेण'

*'आरूढ-पतित' वे होते हैं; जो गत जन्ममें तो उच्चयोनिमें रहे हों; पर इस जन्ममें अपनी वा देवाधिपतिकी इच्छासे अथवा कर्मवश निम्न पशु आदि योनियोंमें आये हों।

(वाल्मी. १।१७।६) वानर-आकृति वाले देवांश पैदा करो। वैसा ही किया गया। वनवासी कोई आकृति-ग्राहक जाति नहीं है। तभी रामायणके वानर नर न होकर वानर ही सिद्ध हुए। हाँ, विशेष वानर थे। यह यदि वादी जान लें; तब उनके समस्त सन्देह दूर हो जावें। उन्हें इस तरहकी पुस्तकें बनानेका कष्ट न करना पड़े। देवताओंकी विशेष शक्तिको न जान सकना अथवा जानते हुए भी अपने साम्प्रदायिक-पक्षपातवश उससे अनजान बने रहना भी ऐसी पुस्तकें बनानेका कारण हैं। 'ऋक्ष-वानर-गोपुच्छाः क्षिप्रमेवाभिजज्ञिरे' (१।१७।१६) इस विषयमें पूर्व लिखा ही जा चुका है।

(५६) श्रीहनुमान्को क्षेत्रज पुत्र बताते हुए वादीने 'न त्वां हिंसामि' इस श्लोकका वास्तविक पाठ नहीं दिया, और अर्थ भी ठीक नहीं दिया। वास्तविक पाठ और अर्थ यह है कि— 'न त्वां हिंसामि सुश्रोणि! मा भूत् ते मनसो भयम्। मनसास्मि गतो यत् त्वां परिष्वज्य यशस्विनि!' (४।६६।१८) यहां 'हिंसामि' का अर्थ वादीने किया है—'मैं तुझको मारता नहीं हूँ'। यहां कोई उसे क्या जानसे मार रहा था कि निषेध किया गया है कि—मैं तुम्हें मारता नहीं हूँ'! यहांपर तात्पर्य यह है कि—मैं तुम्हारे धर्मका नाश नहीं करता हूँ। मैं तुमसे मानसिक गमन कर रहा हूँ। सो योनिभोगसे पतिव्रतधर्मका भङ्ग होता है, मानसिक गमनसे धर्मभङ्ग नहीं होता—यह यहां तात्पर्य है। इसलिए तिलकटीकामें लिखा है—'योनिसम्बन्धेन तावकमेक-

पत्नीव्रतं न नाशयामि। अनेन बलात् परपुरुषेण आलिङ्ग-नादावपि न पातिव्रत्यभङ्गः, किन्तु योनिभोगेनैव इति सूचितम्'। १६वें श्लोकके 'गतात्मा'का अर्थ रामाभिराममें लिखा है—'तद्गर्भ-प्रविष्टात्मतेजा बभूव ! देवत्वाद् विनापि योनिसम्बन्धं निजतेजः-प्रवेशनम्—इति बोध्यम' अर्थात् देवता लोग योनि-सम्बन्धके बिना भी मनोबलके योग द्वारा पुत्रोत्पत्ति कर सकते थे। इस विषयको विशेषरूपमें जाननेके लिए 'आलोक' (८)में 'नियोग और मैथुन' (९) देखना चाहिये। वहां महाभारतके प्रमाणसे देवताओं द्वारा विना योनि-सम्बन्धके भी पुत्रोत्पत्ति प्रमाणित की गई है।

'मारुतोस्मि' पाठ माननेपर 'वायु देवता' अर्थ है। सो देवधर्मसे मानुषधर्म दूषित नहीं होता, यह यहां सिद्ध हो रहा है। तब 'वायुके वीर्यज—वीर्यसे उत्पन्न' यह लिखना गलत है। वायु या मरुत् कोई मनुष्य नहीं है, किन्तु देवता है। वादी लोग नामकरण-संस्कारमें द्वादशी तिथिके देवता तथा स्वाति-नक्षत्रके देवता 'वायु'को आहुति देते हैं। क्या यह मनुष्य है ? यह तो वही है, जिसे 'हवा' कहते हैं। इसीको वाल्मी.में 'हनूमज्जनकश्चैव पुच्छानलयुतोनिलः' (वायुः) (५।५३।२८) 'अनिल' शब्दसे कहा है। यदि यह कोई मनुष्य व्यक्ति होता, तो इसके पर्यायवाचक न दिये जाते। 'अमरसिंह' व्यक्तिको 'देवताकेसरी' नहीं कहा जाता। अग्निके साथ वायु हवा ही होती है। उसी वायुके अधिष्ठाता चेतन देवताको यहांपर

हनुमान्का पिता कहा गया है। इसी प्रकार 'अथोर्ध्वं दूरमाप्लुत्य पितुः पन्थानमास्थाय जगाम विमलेऽम्बरे' (सु० १।१८७) यहां हनुमानके पिताका मार्ग वायुमार्ग आकाश ही है, मनुष्य-विशेषका अर्थ यहाँ संघटित नहीं होता। इसी प्रकार पुच्छ-दहनके समयमें कि—मेरे पिता वायु अग्निके मित्र हैं—इसलिए मुझे अग्नि नहीं जलाता—'पितुश्च मम सख्येन न मां दहति पावकः' (सु० ५३।३३) यहांपर भी वायुकी मनुष्यता संघटित नहीं होती। सो हनुमानके पिताके मनुष्य न होनेसे वादीका यह कथन निर्मूल है।

जो कि प्रतिपक्षी 'मारुतस्यात्मजः श्रीमान् हनुमान् नाम वानरः' (१।१७।१६) यहांपर 'मारुतस्य आत्मजः'के 'आत्मज' शब्दसे 'वीर्योत्पन्न' अर्थ करता है. यह असंगत है। वीर्योत्पन्न, मैथुनोत्पन्न न होनेपर भी लड़केको 'आत्मज' कहा जा सकता है।

(क) वाल्मी.रा.में सीता 'अयोनिजा' थी, जनकके वीर्यसे उत्पन्न नहीं हुई थी। क्षेत्रकी पृथिवीमें हलके उल्लेखनसे हुई थी, देखो वाल्मीकिरामायण। फिर भी उस अयोनिज सीताको जनकजीने 'आत्मजा' कहा है। देखिये-'वीर्यशुल्केति मे कन्या स्थापितेयम् अयोनिजा। भूतलादुत्थितां तां तु वर्धमानां ममात्मजाम्' (१।६६।१५) (ख) महाभारतमें धृष्टद्युम्न और द्रौपदीको यज्ञकुण्डमें उत्पन्न होनेसे 'अयोनिज' (३।२७३।५) कहा गया है। फिर भी उन दोनोंको 'धृष्टद्युम्नमुखा वीरा भ्रातरो द्रुपदात्मजाः' (१।१६४।४)

'ततस्तु कुन्ती द्रुपदात्मजां तां (कृष्णाम्)' (१।२१०।१५) यहां द्रुपदका आत्मज-आत्मजा कहा है। (ग) कर्ण सूतसे पालित था, सूतके वीर्यसे उत्पन्न नहीं हुआ था; यह आबालवृद्ध प्रसिद्ध है। तथापि महाभारतमें उसे 'सूतजः' (कर्ण. ६।५१) 'सूतसुतः' (कर्ण. ८६।१६) 'सूतात्मजः' (कर्ण. ८६।३७) कहा गया है। राधासे पालित होनेपर भी, राधासे उत्पन्न न होनेपर भी उसे 'राधेय' (१।१६२।२३) कहा गया है। (घ) 'सुतां कण्वस्य मामेवं विद्धि' (महा. आदि. ७२।१८) यहाँ शकुन्तला अपने आपको कण्वकी सुता कह रही है, पर वह कण्ववीर्योत्पन्न नहीं थी। (ङ) विवाह-संस्कारमें स्वा.द.जीकी संस्कारविधि (पृ. १५४)में 'मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु' (अ. १४।१।५४) विवाहित हो रही नारीमें मातरिश्वा एवं मरुतों द्वारा सन्तानका उत्पन्न होना कहा गया है; तब क्या उस विवाह्यमान नारीका लड़का मरुतों वा मातरिश्वा (वायु)के वीर्यसे उत्पन्न होता है ? यदि नहीं; तब यहाँ भी मरुत् वा वायुका लड़का हनूमान् उसके वीर्यसे कैसे उत्पन्न माना जावेगा ?

यदि यहाँ अञ्जनासे वायुदेवताका वास्तविक संयोग (मैथुन) होता; तब वह अञ्जना-जोकि पहले धमका रही थी कि-'एकपत्नीव्रतमिदं को नाशयितुमिच्छति' (मेरे एक पति होनेके व्रतको कौन नष्ट करना चाहता है ?) फिर यदि उसी मरुत्का अञ्जनामें मैथुन माना जावे; तो धमका रही हुई वह 'एवमुक्ता ततस्तुष्टा जननी ते महाकपे !' (२०) कि-मैं तुम्हारा एकपतिकत्व

धर्म मैथुनसे नष्ट नहीं कर रहा हूँ; मैं तुममें मानसिक गमन कर रहा हूँ-यह कहनेसे अञ्जना तुष्ट कैसे हो गई ? सो स्पष्ट है कि-वहाँ वायु-देवताका मानस-संयोग हुआ। एक दवाई मुखके द्वारा अन्दर डाली जाती है. और एक इन्जेक्शन द्वारा। पहलेमें 'पान' माना जाता है, दूसरेमें नहीं। अतः योनिमैथुन तो वास्तविक मैथुन होता है, पर मानस मैथुन जिसका उद्देश्य काम-विलास न हो; किन्तु सन्तानोत्पादन हो; वास्तविक मैथुन वा पापकारक नहीं होता।

तभी तो 'एकपत्नीव्रतमिदं को नाशयितुमिच्छति'के उत्तरमें ही तो वायुदेवने कहा था-'न त्वां हिंसामि (तव एकपतिकत्व-व्रतधर्मं न विनाशयामि) मनसाऽस्मि गतो यत् त्वां' (त्वया सह मानससंयोगं करोमि) तब मानसिक योगसे उसके एकपत्नीव्रत-को आघात न पहुँचनेपर ही तो वह तुष्ट हो गई। इससे अत्यन्त ही स्पष्ट है कि-वायुदेवताका वहाँ मैथुन नहीं हुआ था। तभी तो तत्क्षण हनुमान्‌की वहीं उत्पत्ति हो गई (६६।२०)। मैथुन होनेपर प्रकृतिनियमानुसार प्रसवमें १० मास लग जाते।

वादी लोग वैधव्यमें नियोग मानते हैं, यहाँ अञ्जना विधवा भी नहीं थी। केसरी वानर उसका पति विद्यमान था ही। अथवा वादियोंके अनुसार पति नपुंसक भी नहीं दिखलाया गया कि-वह वादियोंके स्वामीजीसे अभिमत आज्ञा देता कि-'अन्यमिच्छस्व सुभगे ! पतिं मत्' उसने पत्नीको कहीं ऐसी रामायणानुसार आज्ञा दी भी नहीं। सो यहाँ वादिसम्मत

नियोग भी नहीं है। यदि नियोग होता; तो हनुमानको 'मारुतस्यौरसः' (१।१७।१६) 'औरस' शब्दसे न कहा जाता। सो वह मारुत-देवकी दिव्य शक्तिसे उत्पन्न हुआ था—यह स्पष्ट है, नियोगज नहीं था।

(६०) 'नरकी पूँछ तो बना ली, पर नारीकी पूँछ बनानेका साहस न हुआ। सारी रामायणमें हमको एक स्थान पर भी वानरियोंकी पूँछका उल्लेख नहीं दिखाई दिया' (पृ. १०१-१०२) इस वादीके आक्षेपके विषयमें हम पूर्व लिख आये हैं। कूदने-फांदने आदिमें पूँछका भी उल्लेख करना पड़ता है; पर वानरियोंका कूदना-फाँदना कहीं नहीं दिखलाया गया; अतः पूँछका उल्लेख भी नहीं मिलता; पर रामायणमें उनकी पूँछका निषेध भी तो नहीं मिलता। नारीकी यदि पूँछ लिख देते, तो श्रीवाल्मीकिकी क्या हानि पड़ती—यह प्रतिपक्षीने नहीं बताया।

यदि पुरुषोंकी दाढ़ी-मूछ होती है, और लड़की तथा स्त्रियोंकी दाढ़ी-मूँछ नहीं होती; तब इसमें क्या कोई दोष हो जाता है ? वैसे ही यदि उस समय उन देवावतार वानरोंकी पूँछ रही हो; और वानरियोंकी नहीं; तो इसमें आश्चर्यको कोई अवकाश नहीं। हिरनोंके सींग होते हैं, हिरनियोंके नहीं, मेषके सींग होते हैं, मेषीके नहीं। कई हाथियोंके बाहरी दाँत होते हैं, कई हथनियोंके नहीं। अतः उन अप्राकृत दिव्य विचित्र वानरोंके पूँछ होती हो; और वानरियोंके नहीं; तो इसमें न तो कुछ आश्चर्यकी बात है, न दोषकी। न साहसका कोई अवकाश है।

शेष है 'देवोंकी पुच्छ, वानरोंकी आकृति कैसी थी' इत्यादि विषयमें पूर्व लिखा जा चुका है। 'हनूमानको ही टेढी वाला नाम देना व्यर्थ है' यह वादीका तर्क ही व्यर्थ है। मतुप् प्रत्यय यहां अतिशय अर्थमें है। उसका इतिहास ही प्रश्नका उत्तर दे देता है, उसकी हनुपर इन्द्रने वज्र मारा था; इससे हनु टेढी होकर बड़ी हो गई, उससे उक्त नाम है। 'क्षिप्तमिन्द्रेण तं वज्रं···वामो हनुरभज्यत। ततोभिनामधेयं ते हनूमानिति कीर्तितम्' (४।६६।२३-२४) हर एकका हर एक नाम रखा जा सकता है। पर जब एकका रूढ हो; तब फिर दूसरेका नाम नहीं रखा जाता।

(६१) पाण्डुकी स्त्रीके नियोगके विषयमें 'आलोक' अष्टम पुष्पमें देखना चाहिये। स्वा.द.जीने तो नियोगमें भी दस-ग्यारह पति माने हैं, इसपर वादी स्वयं विचार करे। (६२) वादी कहता है कि-'मैं तो मानता नहीं कि-सूर्य, इन्द्र, वायु, बृहस्पति, अश्विनीकुमार आदि नाम वाले जो रामायण-कालमें थे; वे ही महाभारतकालमें थे', महाशय! आपके न माननेसे क्या होता है? वे तो स्वा.द.के कालमें भी थे, अब भी हैं। वे अमर हैं। उन देवताओंको कोई हटा नहीं सकता। स्वामीसे कराये हुए विवाहमें वे भी नारीको सन्तान देते हैं। देखिये सं.वि.पृ. १५४ 'इन्द्राग्नी, द्यावापृथिवी, मातरिश्वा, मित्रावरुणा, भगो अश्विना उभा। बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु' (अथर्व. १४।१।५४) इसमें वादीसे आक्षिप्त इन्द्र, द्यावा (स्वा.द.के

अनुसार)-सूर्य, मातरिश्वा-वायु, उभौ अश्विनौ-दोनों अश्विनी-कुमार विवाह्यमान नारीमें सन्तान उत्पन्न करने आते हैं। वादीका यह तर्क कितना निकम्मा है कि-'सूर्यके पुत्र कर्णकी पूँछ तो नहीं, पर सुग्रीवकी थी; वायु-पुत्र भीमकी तो पूँछ नहीं थी; पर हनुमानकी थी' आदि। जबकि रावणको वानर-मुखवाले नन्दिकेश्वरका शाप मिला कि-बन्दर तुम्हारी कुलका विध्वंस करने वाले होंगे (७।१६।१७) और ब्रह्माजीने भी इसीलिए देवताओंको आर्डर दिया था कि-'सृजध्वं हरिरूपेण' (१।१७।६) 'ते तथोक्ता भगवता प्रतिश्रुत्य च शासनम्। जनयामासुरेवं ते पुत्रान् वानररूपिणः' (१।१७।८) तब वानरयोनिमें उत्पत्तिके कारण उनकी पूँछ भी होनी थी; पर भीमादिके समय वानररूपकी आवश्यकता नहीं थी; अतः वहाँ वानररूप तथा पूँछका भी कोई काम नहीं था। कई पूँछधारिणी लड़कियोंकी उत्पत्ति हुई है (पढ़िये समाचारपत्र), पर न तो उनके माता-पिताओंकी पूँछ थी; न उनके भाई-बहिनोंकी। तब उनके माता-पिता पर वैसा प्रश्न करता हुआ वादी खण्डित है।

'देवोंको बन्दरोंकी ही योनि क्यों पसन्द आई' 'बन्दर-जाति सारी की सारी दूसरोंके घर बर्बाद करती है, पर रामायणमें उसने सँवारनेका कार्य किया' वादियोंके ऐसे सभी तर्क निस्सार हैं। उन्होंने ही तो शत्रुनगरी लङ्काके घरोंको बर्बाद किया। यह आजकलके साधारण वानर नहीं थे, किन्तु देवावतार वानर थे। अतः वे ज्ञानशाली थे, उन पर यह प्रश्न

ही व्यर्थ है। वानर-योनि उनको पसन्द हो वा न हो, उन्होंने ब्रह्माके आदेशसे नन्दिकेश्वरके शापवश वानररूप धारण करना ही था। आजका सिखलाया हुआ वानर भी संवारनेका काम करता ही है।

'मनुष्योंके वीर्य द्वारा बन्दरियोंको गर्भ असम्भव है' यह वादीका तर्क निस्सार है। ऐसी बातें मोघवीर्य पुरुषोंकेलिए हैं, अमोघ-वीर्य वालोंकेलिए नहीं। अमोघवीर्योंकेलिए तो स्त्रीकी भी बहुत आवश्यकता नहीं। मछलीको भी उपरिचर-वसुके शुक्रसे गर्भ हो गया था। 'अनेकधा कृताः पुत्रा ऋषिभिश्च पुरातनैः' यह बृहस्पतिका वचन इन बातोंका संकेत दे रहा है। यहाँ मनुष्य कोई था ही नहीं। वे तो देवता थे। देवता लोग तो 'सन्ति देवनिकायाश्च संकल्पाज्जनयन्ति ये' (महाभा. आश्रम. ३०।२२) संकल्प द्वारा अपनी मनचाही सन्तान पैदा कर सकते हैं।

'वन संन्यासीका एक नाम है, वनोंमें रहनेवाले वन्य, वानप्रस्थाश्रमीको वनी, वनवासी (मनु. ६।२७) कहते हैं, यह ठीक है; पर इन्हें 'वानर' कहीं नहीं कहा जाता। श्रीहर्षचरित तथा दशकुमारचरित-आदिमें आटविक-सामन्तों, आरण्यक आदिका वर्णन आया है, पर उन्हें कहीं भी बन्दर नहीं कहा गया। उनका अनन्तवर्मासे युद्ध भी हुआ था। कई जङ्गली भील आदि श्रीहर्षकी बहन राज्यश्रीको ढूँढ़ने भी गये थे। पर कहीं भी न तो उन्हें वानर कहा गया; न वानरके पर्याय-वाचक

शब्दसे, न उन्हें नखदंष्ट्रायुध वा कपि आदि कहीं कहा गया है। तब जो कई दयानन्दी रामायणकी अपनी की हुई टीकामें 'वानर'का 'वनवासी' अर्थ करते रहते हैं-यह गलत सिद्ध हो गया।

किरातार्जुनीयमें 'वनसंनिवासिनां पत्यौ' (१।२६) 'वनेचरः' (१।१) आदि, तथा कादम्बरीमें 'वनचरोपि कृतमहालयप्रवेशः' (हारीतवर्णनमें) इन स्थलोंमें 'बनचर' आदि तो कहा है, पर उन्हें 'वानर' वा उनके पर्यायवाचकोंसे कभी नहीं कहा, इसी प्रकार उन वानरोंको 'वनवासी मनुष्य' माननेवाले योरोपियन स्कालरोंके आधारपर लिखनेवाले श्रीनानूराम व्यास आदिका भी पक्ष निराधार है।

(६२) कई सुधारक सनातनधर्मिबन्धुव, यहाँ अन्य कल्पना करते हैं। वे कहते हैं—'हनुमान वानर कपिगोत्रके ब्राह्मण थे; और जाम्बवान् ऋक्षगोत्रके। पर वाल्मीकिने उनका काव्यमय वर्णन किया है। वे इसमें 'कपिज्ञात्योर्ढक्' (पा. ४।१।१२७) तथा 'कपि बोधादाङ्गिरसे' (४।१।१०७) कपिष्ठलो गोत्रे' (८।३।९१) आदि पाणिनिके सूत्र, तथा 'शौनक-कापेय' (छान्दो० ४।३।५) 'कैशोर्य-काप्य' (बृह. २।६।३।५।१-३) 'पतञ्जलकाप्य' (बृ. ३।३।१, ३।७।१) इत्यादि प्रमाण उपस्थित करते हैं। यह सब निर्मूल कल्पनाएँ हैं। इसमें 'कपि' शब्द तो लिखा है, पर वानरादि इसके पर्यायवाचक कहीं भी नहीं, अतः स्पष्ट है कि यहाँ का 'कपि' शब्द नाम-विशेष है। जैसे-शाकटायन शकट का लड़का था; पर इससे 'शकट'

गाड़ी नहीं ली जाती। चाणक्य चणकका लड़का-चनेका लड़का नहीं माना जाता। पूर्वोक्त छान्दोग्य के ही वचनमें 'शौनक' आया है, जो 'शुनक' का लड़का है, इससे 'शुनक' कुत्तेका नाम नहीं हो जाता। यह सब तो नाम-विशेष हैं, इसी प्रकार 'कपि' भी गोत्रमें रूढ़ नाम है; वानर-वाचक नहीं।

हाँ, 'कपिज्ञात्योर्ढक्'में तो बन्दर ही अर्थ है, इसका उदाहरण 'कापेय:' है। यहाँ 'कपेर्भाव: कर्म वा' यह अर्थ है। इसीका उदाहरण रामायणमें भी है, 'कच्चिन्न खलु कापेयी सेव्यते चलचित्तता' (६।१२६।२३) यहां बन्दर वाला भाव वा कर्म अर्थ है। यहां गोत्रका कुछ भी सम्बन्ध नहीं। दूसरे सूत्रमें आङ्गिरसगोत्रमें 'काप्य:' उदाहरण है, पर हनुमानादिकेलिये 'काप्य:' न आनेसे, तथा कपिके अन्य पर्यायवाचक आनेसे वे स्पष्ट वानरादि सिद्ध हुए। कपिगोत्र वालोंकी पूंछ तथा पूंछको स्वाभाविक ऊपर उठाना कहीं नहीं होता, वा वर्णित होता। ऋक्षगोत्रवालोंके शरीरपर रीछों वाले बड़े-बड़े रोम नहीं होते। सो यह सब अर्वाचीन लोगोंकी निर्मूल कल्पनाएँ हैं।

जो यह कहा जाता है कि—'यदि वे वानर पशु थे; तो सुग्रीवकी स्त्री रखनेसे बालीको क्यों मारा गया'। क्या धर्मशास्त्रका कानून पशुओंपर भी चलता है?' इसपर हम पहले निर्देश कर चुके हैं कि-यह साधारण वानर तो नहीं थे, देवताओंसे वानरयोनिमें मनुष्यलोकमें आये हुए थे। जब उनमें मानुषी ज्ञान था; तथा मानुषी व्यवहार भी थे; तब वे भी कुछ

मानुषी बन्धनमें आ ही जाते हैं।

यह तो देवता थे; जब देव-देव विष्णु भी मानुषी-अवतार में आते हैं, वे भी कुछ बन्धनमें आते हैं। जब शेषावतार श्री-बलरामजीने रोमहर्षण सूतको कुशासे मार दिया; तब उन्हें अवतार होनेपर भी मानुषी व्यवहारमें आ जानेके कारण ब्रह्म-हत्याके दूर करनेकेलिए तीर्थयात्रारूप प्रायश्चित्त करना ही पड़ा। वाल्मी.रा.के ४।१८।१८ पद्यकी रामाभिराम-टीकामें इसे स्पष्ट किया गया है—

'ननु सुग्रीवस्यापि ज्येष्ठभ्रातुः पितृसमस्य भार्याविमर्शनं तुल्यम्-इत्यत आह-'अस्य त्वं धरमाणस्य (जीवतः)' इति। धरमाणस्य-प्राणान् धारयत एव जीवतः त्वया निश्चीयमान-जीवनस्यैव पत्न्यां तव स्नुषाभूतायां रुमायां यतो वर्तसे; अतः त्वं स्पष्टं पापकर्मकृत्। सुग्रीवस्तु तव जीवन-निश्चयाऽभावात् त्वत्पत्न्यां तारायां प्राग् अवर्तिष्ट; अतः परं [तव मरणे] वर्त्स्यति च। किं च—त्रैवर्णिकेष्वपि [युगान्तरेषु, अत्र युगे वा शूद्रवर्णस्य] देवरस्य मृतभ्रातृस्त्रियाम् अपुत्रायां वृत्तिदर्शनात् तिर्यग्योनिषु तस्यां वृत्तिर्न दोषः। तथा वृत्तौ च मरणज्ञानमेव प्रयोजकं तिर्यक्षु इति भगवदाशयः। अनेन त्रैवर्णिकेतर-(शूद्रादिवर्ण) स्त्रीणां मृत-भर्तृकाणां तरुणीनां स्वजातीयपुरुषाङ्गीकारो नाधर्म इति सूचितम्। दृश्यते च तथा व्यवहारः शूद्रादिजातिषु [सो यहाँ ज्ञानवती पशु-पक्षी जातिमें त्रैवर्णिकोंसे भिन्नों वाला व्यवहार बताया गया है कि-जीवितभर्ता वाली स्त्रीको त्रैवर्णिकसे इतर लोग भी नहीं लेते,

परन्तु मृतभर्तृकाको त्रैवर्णिकोंसे इतर देवरादि ले लेते हैं। फिर प्रश्न होता है कि—पशुमें मानुष-नियमित धर्मशास्त्रकी प्रवृत्ति कैसे? इसपर टीकाकार स्पष्ट करते हैं—]

'न च मनुष्याधिकारस्य निषेधादिशास्त्रस्य कथं तिर्यक्षु [पशुपक्षिषु] प्रवृत्तिरिति वाच्यम्, तिर्यग्योनेरपि मनुष्यवद् राजादि-व्यवहारदर्शनेन मनुष्यतुल्यज्ञानवत्त्वाद् अस्त्येव अयं दोष इत्याशयात् [पशु भी यदि आरूढपतित हैं; और मनुष्यों वाला ज्ञान रखते हैं, तथा मनुष्यों-जैसा व्यवहार करते हैं; तो वे भी मानुषी धर्मशास्त्रके कुछ बन्धनकी सीमामें आ जाते हैं। अज्ञानी उतना बन्धनमें नहीं आता; जितना कि ज्ञानी।] किंच—धर्मेऽनधिकारिणामपि इन्द्रादीनां वृत्रवधादौ ब्रह्महत्यादि-स्मरणेन निषेधेषु तदतिक्रमप्रायश्चित्तादौ च देवानाम् अधिकारवद् एषाम [इन्द्र-सूर्याद्यवतारभूतानां वानराणाम्] अपि अधिकारे बाधकाऽभावः। किञ्च [इन्द्रादि] देवानां स्वयजनीयेन्द्रान्तराऽभावाद् अनधिकार इति पूर्वमीमांसायां निर्णीतम्। एवं च तदनपेक्षदानादिधर्मेषु ब्रह्मविद्यायां च अधिकारोऽस्त्येव-इति उत्तरमीमांसायां स्पष्टम्। तद्वद् ईदृशानां ज्ञानवतां तिरश्चामपि अधिकारे बाधकाऽभावः।

किञ्च—'सर्वदेवतावाचकपदानाम् ईश्वरवाचकत्वेन सर्वत्र देवानामधिकारोऽस्त्येव। न च ब्राह्मणत्वाद्यभावात् तेषामनधिकारः, तेषामपि क्षत्रियत्वाद् वैवस्वतमन्वादेरिव [अधिकारः], अतएव चन्द्र-वरुणादीनां यज्ञः स्मर्यते पुराणेषु; तत्र-तत्र कर्मणि अर्थवादतः फलकल्पनवत् पुराणस्थार्थवादैः तदधिकारस्यापि

कल्पयितुं युक्तत्वात्। किञ्च—'त्रैवर्णिकस्य अधिकार इति त्रैवर्णिकपदं वेदतदर्थज्ञानवत्परम्। अतः [तादृग्विधानां] देवादीनां तदधिकारः सिद्ध इति भगवतो व्यास-वाल्मीकिप्रभृतीनां च आशयः। जैमिनेस्तु एतदंशे [देवानधिकारोल्लेखे] अज्ञानमेव। अतएव तद्दूरीकरणार्थं मार्कण्डेयेन आत्मानं प्रति धर्मान् पृच्छतो जैमिनेः विन्ध्यारण्यवासितत्त्वज्ञपक्षिमुखेन धर्मबोधनं कृतम्। तेन हि पक्षिणां ज्ञानानधिकार इति स्वोक्ते अर्थे तस्य अप्रामाण्यग्रहो भविष्यतीति तदाशयः। अतएव गृध्रराजस्य भगवता दाहादि कृतम्। अग्रे च सम्पातिना तद्भ्रात्रा करिष्य-माणमुदकदानादि नाऽसङ्गतामिति'।

यह विषय पहले संकेतित किया जा चुका है। 'मया कपित्वं च प्रदर्शितम्' (४।२४।१२) इसमें सुग्रीव द्वारा अपना स्पष्ट वानरत्व बताया गया है। कपिगोत्रकी यहाँ कुछ भी संगति नहीं लगती। क्या कपिगोत्रवाले भाईको मरवा दिया करते हैं। वस्तुतः आक्षेप्ताओं द्वारा वानरोंका कपिगोत्र वा मनुष्य बताना निराधार है-यह सिद्ध हो गया।

(ख) इस प्रकार यही सुधारक लोग जरा व्याध-जिसने श्रीकृष्णको पैरोंमें बाण मारा था-का अर्थ करते हैं कि-'जरा' नाम वृद्धावस्थाका है। सो वृद्धावस्थाने ही श्रीकृष्णको मारा, किसी पुरुषने नहीं। नहीं तो उस पुरुषका नाम स्त्रीलिङ्गान्त क्यों होता'? उन्हें यह जानना चाहिये कि-पुरुषका भी स्त्री-लिङ्गान्त नाम हो सकता है-'लुम्मनुष्ये' (पा. ५।३।९८) इस सूत्रके

उदाहरण 'चञ्चेव मनुष्यः चञ्चा' 'वध्रिकेव मनुष्यो वध्रिका' स्त्रीलिङ्गान्त दिये गये हैं, जो पुरुषके हैं। इस प्रकार 'जरा-व्याध'का भी यदि स्त्रीलिङ्गान्त नाम है, तो 'जरेव जरा' इस विग्रहवश कोई दोष नहीं। अतः इसमें आलङ्कारिकताका प्रयास व्यर्थ है। आजकल भी लड़कियोंके भी पुरुषों वाले नाम और लड़कोंके भी लड़कियों वाले नाम (दुर्गा आदि) देखे जाते हैं।

(६३) कई सुधारक लोग आजकलके नवशिक्षितोंकी हनुमानादिकी वानरतामें आस्था न देखकर कई प्रकारकी कृत्रिम कल्पनायें करके वानरोंको मनुष्य सिद्ध करना चाहते हैं। उनमें श्रीसातवलेकरजी देवताओं तथा भूत-प्रेतादिको भूटानके मनुष्य सिद्ध करनेकी चेष्टामें लगे रहते हैं। वे वानरोंको मनुष्य सिद्ध करनेकेलिए उपहास्ययोग्य कल्पनायें करते हुए कहते हैं- 'प्राचीनकालमें कई जातियाँ अपने चेहरेपर किसी न किसी पशु-पक्षीके कृत्रिम मुख लगा लेते थे। जो पुच्छ दीखता है, वह 'पाश' जो एक अस्त्र रस्सी जसा इनके पास रहता था, उसका अन्तिम भाग है। शेष पाशका भाग कमरेके चारों ओर लपेटा होता था' (बालकाण्डनिरीक्षण पृ. ४८१) 'वानरोंका पुच्छ यही पाश ही है। यह वानरोंके शरीरका भाग नहीं है। यदि वह इसके शरीरका भाग होता, तो मारुतिकी दुमको जब आग लगा दी गई; तो इससे उसको दुःख हो जाता, पर वैसा कष्ट नहीं हुआ। इससे स्पष्ट है कि-मारुतिकी दुम उसके शरीरका भाग

न था' (पृ. ४८२) वादियोंकी इन उक्तियोंका मूल्य हास्यसे अधिक नहीं।

यह बात रामायणसे सिद्ध नहीं होती, कि–जैसे दशहरेमें लोग हनुमान आदिका बन्दरोंवाला चेहरा लगाये हुए होते हैं; वैसे हनूमान आदि भी वानरोंके चेहरे लगाये होते थे। यह वादीकी बनावट है। रामायणमें तो वानरोंके दाँत न दिखलाकर दाढ़ें दिखलाई गई हैं। पूँछ भी स्वाभाविक दिखलाई गई है। उस पूँछका ऊपर करना 'उच्छ्रितलांगूला:' (५।५७।४२) आदि शब्दोंमें रामायणमें स्पष्ट है। परन्तु पाश तो स्वाभाविकतासे स्वयं नहीं उठ सकता। वे राक्षस मूर्ख थोड़े ही थे कि–"बन्दर' को अपनी पूँछ प्यारी होती है"–यह सोचकर (जैसाकि रामायणमें लिखा है) उसके पाशको जलाते; और वह हनूमान उस पाशसे लङ्काको जला देता।

यदि वह पुच्छके स्थान पर पाश था; तब तो वह बाहरी वस्तु थी; तब तो हनुमानको पीड़ा भी नहीं पहुँच सकती थी। इतना क्या रावणको मालूम नहीं था ? वस्तुतः हनुमान्के देवावतार होनेसे उसकी पूँछ अग्नि लगे होनेपर भी उसे कष्ट नहीं लग रहा था। इधर रामायणमें यह भी लिखा है कि–सीताकी अग्निसे प्रार्थना करने पर अग्नि हनुमान्को नहीं सता रही थी। 'यद्यस्ति पतिशुश्रूषा···शीतो भव हनूमतः' (सुं. ५३।२६-२७)। यदि पाशको अग्नि लगाई गई होती, तब हनुमान पाशको अपनी कमरसे उतार कर फेंक देते।

वस्तुतः यह सब कल्पनायें निरी निकम्मी वा निःसार हैं। फिर मनुष्योंने रीछका कौनसा चेहरा लगाया था? शरीर पर रोम कैसे लगाये थे? क्या वे रीछकी भांति चलते थे? ग्रन्थकारकी स्वाभाविक लिखी हुई देवतावतारमूलक वानरता इनकी छिप नहीं सकती, चाहे अर्वाचीन लोग लाख बल लगा लें! आशा है-विद्वान् पाठकोंने यह रहस्य समझ लिया होगा। इससे उन लोगोंकी यह बात भी कट गई कि-'आज भी वालिद्वीप, जावा, सुमात्रा वा आस्ट्रेलियाके कई मनुष्य मिलते हैं, जिनकी पूँछ-जैसा मांस-पिण्ड लगा हुआ है' पर वे 'वानर' नहीं कहे जाते। न ही उनमें 'उच्छ्रितलांगूलाः, कर्णौ निकुच्य' वाली रामायणप्रोक्त बात घटती है।

(६४) वाल्मी. में तारा लक्ष्मणको कहती है-'कृतात्र संस्था सौमित्रे! सुग्रीवेण यथा पुरा। अद्य तैर्वानरैः सर्वैरागन्तव्यं महाबलैः' (कि. ३५।२१) ऋक्ष (रीछ) कोटिसहस्राणि गोलाङ्गूल-(लंगूर) शतानि च। कोट्योऽनेकास्तु काकुत्स्थ कपीनां (बन्दर) दीप्ततेजसाम्। अद्य त्वामुपयास्यन्ति जहि कोपमरिन्दम!' (२२) (यहाँ हजारों रीछ, लंगूर, बन्दर युद्धार्थ आवेंगे। यह सभी पशु हैं। मनुष्योंकी रीछ वा लंगूर एवं बन्दर जाति नहीं सुनी गई। तब एक दयानन्दी टीकाकारका इसके अनुवादमें 'ऋक्ष जातिके वनवासी, गोलांगूल जातिके वनवासी, वनवासियोंके अनेक समूह आपके साथ जायेंगे' यह अर्थ करना गलत है। जहाँ भी 'वानर' शब्द आता है, वादी वहाँ 'वनवासी मनुष्य' अर्थ कर

देता है—यह उसका निर्मूल पक्ष है। यहां तो ऋक्ष, गोलांगूल तथा कपिके साथ 'वानर' शब्द ही नहीं है, तो वादीने यहां बनावटसे 'वनवासी' यह निर्मूल अर्थ कैसे कर दिया ?

इन लोगोंको ऐसा असत्य व्यवहार करते हुए पापका डर भी नहीं रहता। खेद !!! 'वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः, पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः' शकुन्तलानाटकके ४र्थाङ्कके इस उत्तम पद्यमें कण्वमुनिने कहा है कि—मैं वनवासी, अपनी लड़कीके पतिगृहमें जा रही होनेपर दुःखी हो रहा हूँ, तब गृहस्थी लोग क्यों न दुःखी होते होंगे'।

यहांपर मुनिको 'अरण्यौकाः' (वनवासी) तो कहा गया है; पर उस मुनिको वानर वा कपि नहीं कहा गया है। इसी प्रकार किरातार्जुनीयमें एक 'वनेचर' को जिसने युधिष्ठिरको दुर्योधनकी रिपोर्ट दी थी, कहीं भी वानर नहीं कहा गया। इस प्रकार बहुत-सी प्राचीन पुस्तकोंमें आटविक, वनेचर, आरण्यक आदि शब्दोंसे वनवासियोंका बहुत वर्णन आया है। रघुवंश आदि काव्योंमें रघुका मूल सेना, आटविकोंकी सेना आदिका वर्णन तो बहुत आया है, पर यह याद रखनेकी बात है कि—उन्हें कहीं भी वानर वा कपि आदि नहीं कहा गया। अतः रामायणके वानरोंको 'वनवासी मनुष्य' बताना वादियोंकी बनावट है, निर्मूल कल्पना है। श्रीरामकेलिए 'वनगोचरः' (६।११३।६) आदि शब्द तो आये हैं; पर उन्हें 'वानर' नहीं माना गया; तब वादियोंका यह निर्मूल प्रयत्न है।

'हरिपुङ्गवाः'(वाल्मी. ४।३७।४) 'प्लवङ्गमाः' (५) 'वानराः' (६) 'महेन्द्र-हिमवद्विन्ध्यकैलासशिखरेषु च। मन्दरे पाण्डु-शिखरे पञ्चशैलेषु ये स्थिताः' (२) 'पर्वतेषु समुद्रान्ते पश्चिमायां तु ये दिशि' (३) अञ्जने पर्वते चैव' (५) महाशैलगुहावासाः' (६) वनेषु च सुरम्येषु...तापसानां च रम्येषु वनान्तेषु समन्ततः' (८) तांस्तान् समानय क्षिप्रं पृथिव्यां सर्ववानरान्' (९) यहां विविध पहाड़ोंकी चोटियों, गुफाओं, समुद्री तटोंके रहनेवाले वानरोंको भी दयानन्दी टीकाकार बलात् 'वनवासी मनुष्य' लिखता गया है, यह सारी उसकी निर्मूल कल्पना है।

इस प्रकार योरोपियन स्कालरोंके पदचिन्हों पर चलनेवाले सुधारकोंका पक्ष काटकर हमने हनुमानादिको देवावतार (अप्राकृत, दिव्य) वानर सिद्ध कर दिया है। इस पक्षमें रामायणके वचनोंमें कुछ भी असङ्गति वा प्रक्षिप्तता नहीं पड़ती है। जिस पुस्तकका जो अभिप्राय हो; उसे आप मानें या न मानें—यह आपकी इच्छापर अवलम्बित है, पर उसके वचनोंकी तोड़-मोड़ द्वारा ग्रन्थकारके तात्पर्यको बदलना—अत्यन्त अनुचित है, चोर-बाजारी है।

(६४) हनुमान्की पूजाके विषयमें यह जानना चाहिए कि-वे मरुतोंके अवतार हैं, जैसेकि हम पहले कह चुके हैं; और मरुतोंको रुद्रका अवतार माना जाता है, जैसे कि वेदमें—'विद्मा हि रुद्रियाणां शुष्ममुग्रं मरुतां' (ऋसं. ८।२०।३) 'रुद्रस्य ये मीढुषः सन्ति पुत्राः' (६।६६।३) यहाँ मरुत् देवता हैं। सो रुद्रके अवतार

होनेसे ही मारुति-हनुमानकी हिन्दुओंमें पूजा होती है, बन्दर होनेसे नहीं।

इसमें शिव-विष्णुका परस्पर अभेद वा प्रेम भी झलकता है, जिससे साम्प्रदायिक कलह दूर हों। जब भगवान रामने 'रामेश्वरलिङ्ग'को समुद्र पार करनेकेलिए पूजा था; तो विष्णुके अवतार श्रीरामने तो अपनी शिवभक्ति दिखलानेकेलिए इस पदका तत्पुरुषसमासका विग्रह किया था कि—'रामस्य ईश्वरः शिवः' यह महादेव रामके ईश्वर हैं, राम उनका सेवक है। पर भगवान् शिवने उक्त पदका बहुव्रीहि-समासका विग्रह किया था कि—'राम ईश्वरो यस्य' राम शिवके ईश्वर हैं, और शिव सेवक हैं। परन्तु हरि-हरके भक्तोंने उक्त पदका कर्मधारयका विग्रह किया था—'रामश्चासौ ईश्वरश्च' राम और शिव दोनों एक-कोटिके हैं। इस प्रकार अभेदवादको प्रोत्साहन दिया गया था। भेदवादियोंने 'रामेश्वरम्'का समाहारद्वन्द्वका विग्रह किया था—'रामश्च ईश्वरश्च तयोः समाहारो रामेश्वरम्'। 'ईश्वर' महादेवका प्रसिद्ध नाम है, इस प्रकार रुद्र हनुमान्के रूपमें विष्णुके सेवक हुए। विष्णुके अवतार राम-कृष्णने शिवकी पूजा करके (जैसा कि महाभारत आदिमें प्रसिद्ध है) अपनेको शिवका सेवक बताया है। कहीं शिव विष्णुके मोहिनीरूपमें विष्णुकी मायामें मोहित हुए, और कहीं विष्णु शिवकी मायामें (देखो शिवपुराण) मोहित हुए। इस प्रकार पुराणोंका भी अन्तिम अभिप्राय हरि-हरके अभेदमें हैं, साम्प्रदायिक कलहोंकी

सृष्टिमें नहीं। कलह अज्ञानियोंमें होता है। कहनेका यह निष्कर्ष है कि-हनुमानकी मरुदवतार तथा रुद्रावतार होनेसे ही पूजा होती है, बन्दर होनेसे नहीं। हाँ, वन्दरोंका हनुमानके अङ्ग समझकर कहीं-कहीं सम्मान होता है। अस्तु।

अब हम 'पशु-पक्षियोंके भाषण' पर लिखेंगे। थोड़ी समझके लोग पशु-पक्षियोंका भाषण लिखा देखकर उसमें असम्भव समझते हुए उन्हें मनुष्य सिद्ध करने लग जाते हैं- यह ठीक नहीं। रघुवंशमें महाकवि कालिदासने शेरकी मनुष्य-वाणी दिखलाई है; और नन्दिनी गायकी भी मनुष्यवाणीमें वर देनेकी बात लिखी है। नलकी कथा महाभारतमें तथा नैषधीयचरितमें हंस पक्षीकी मनुष्यवाक् लिखी है, पर इससे यह सब मनुष्य नहीं सिद्ध हो जाते हैं, किन्तु यह सब दिव्य (देवांश) थे; जैसे कि-नैषधचरितमें दमयन्तीने हंसको 'हंसोपि देवांशतयासि वन्द्यः, श्रीवत्सलक्ष्मेव हि मत्स्यमूर्तिः' (३।५७) देवताका अंश कहा है, अतः इन बातोंको न समझकर उनको मनुष्य बनानेकी कल्पना करनी वस्तुतः निर्मूल है। आशा है-पाठकगण स्वयं भी इन बातोंका मनन करेंगे, केवल सुधारकोंके कथन पर विश्वासमात्र न कर लिया करेंगे। हमने मार्गप्रदर्शन कर दिया है। पाठकोंने ठीक-ठीक समझ लिया होगा। अब पशु-पक्षियोंके भाषणपर देखिये।-

(३) पशु-पक्षियोंका भाषण।

पहले तो वादी लोग हनुमान् आदि वानरों और जटायु आदि गीधोंको पशु-पक्षी योनिवाले नहीं मानते; जब रामायण-आदिके बाह्य और आभ्यन्तर प्रमाणोंसे हम उन्हें पशु-पक्षी सिद्ध करते हैं, जैसा कि हम गत निबन्धमें कर चुके हैं, और उन्हें निरुत्तर करते हैं, तब और कोई उपाय न रह जानेसे वे वहां चुप हो जाते हैं; फिर खण्डनका अन्य प्रकार लेते हैं कि-'यदि यह मनुष्य नहीं थे, किन्तु पशु-पक्षी थे; तब यह मनुष्यकी तरह व्यक्त वाणीसे बोल कैसे सके? इस प्रकार पुराणोल्लिखित पशु-पक्षियोंके संवादमें भी सङ्गति जाननी चाहिये कि-यह मनुष्य थे, पशु-पक्षी नहीं; क्योंकि-पशु-पक्षियोंका भाषण असम्भव है। वानर हनुमान् भला व्याकरणका विद्वान् कैसे हो सकता है? इन पुराणोंके असत्यवक्ता होनेसे वे प्रमाण नहीं।'

इस पर हम विचार करते हैं। थोड़ी देरकेलिए मान भी लिया जाये कि-पुराणोंमें पशु-पक्षियोंका भाषण असम्भव है; तब यहां क्या दोष हुआ? क्या पञ्चतन्त्र आदिमें पशु-पक्षियोंके भाषणके बहाने कथाएँ नहीं बताई गईं? क्या उन्हें कोई दोष-जनक मानता है? क्या उनसे शिक्षा नहीं मिलती? इस प्रकार पुराण-इतिहासमें भी पशु-पक्षियोंके संवादोंसे शिक्षा ही मिलती है कि-यदि पशु-पक्षी भी ऐसे संवाद करते हैं, तब मनुष्य भी वैसा क्यों न करें? जैसे कि-'वनस्पतयः सत्रमासत' 'सर्पाः सत्रमासत'

यहाँपर कृष्णयजुर्वेदादिमें चित्तवर्जित भी वनस्पतियोंका यज्ञ कहा गया है। यह मीमांसादर्शनमें वर्णित है।

और देखिये-'पिप्पल्यः समवदन्त आयतीर्जननाद् अधि। यं जीवम् अश्नवामहै, न स रिष्याति [हिंस्यते] पूरुषः' (अथर्वशौ. सं. ६।१०६।२) यहांपर वादियोंके अनुसार अचेतन भी पिप्पली नामक ओषधिका संवाद (बातचीत) वेदमें भी दिखलाया गया है, तब चेतन अङ्गद आदि वानर तथा जटायु आदि पक्षियोंके इतिहासवर्णित संवादमें क्या विवाद? 'ओषधयः समवदन्त सोमेन सह राज्ञा। यस्मै कृणोति ब्राह्मणः, तं राजन्! पारयामसि' (यजु. माध्यं. १२।९६) (ओषधियाँ अपने राजा सोमको कहती हैं कि-ऐ राजा! ब्राह्मण वैद्य हम ओषधियोंका जिसकेलिए प्रयोग करता है, हम उसे रोगोंसे परे कर देती हैं) यहां भी वादियोंके अनुसार अचेतन भी ओषधियोंका अपने राजा सोमके साथ संवाद दिखलाया गया है। यहां इनका यदि अभिमानि-देवता स्वीकार किया जाता है; तब हिमालय-पर्वत आदियोंके संवादमें भी तथा उनकी पुत्री पार्वती आदिकी उत्पत्तिमें भी अभिमानी देवताका स्वीकार कर लेना चाहिये। यदि ऐसा है, तब चेतन पशु-पक्षियोंके भाषणमें थोड़ा भी संशय न रहा।

आगे देखिये-'भूमिरधिब्रवीतु मे' (अथर्व. १२।१।५९) यहां वादियोंके अनुसार अचेतन भी पृथिवीका भाषण दिखलाया गया है। 'ब्रवीतु'में 'ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि' धातु है। यदि ऐसा

है, तो चेतन पशु-पक्षियोंका पुराणस्थित संवाद (बातचीत) व्यभिचरित कैसे हो सकता है? 'ग्रावा यत्र वदति' (अथर्व. २०।२५।६) इस लौकिक-व्यवहारमें अचेतन ग्रावा (पत्थर)का भी बोलना बताया है। 'वदँ व्यक्तायां वाचि'। इस प्रकार कृष्णयजुर्वेदमें 'शृणोत ग्रावाणः' (कृ.य.तै.सं. १।१।१३।१) तथा 'श्रोता ग्रावाणः' (शु.य.माध्यं. ६।२६) यहांपर पत्थरोंकी श्रवण-शक्ति दिखाई गई है।

इसका संकेत महाभाष्य (३।१।७ के सूत्रके भाष्य) में भी सूचित किया है। वहां पर 'कूलं पिपतिषति' पर प्रश्न है कि-यदि इच्छा अर्थमें सन् होता है; तो यहांपर सन् नहीं हो सकता; क्योंकि-किनारेके अचेतन होनेसे उसमें इच्छा नहीं बन सकती। तब 'आशङ्कायां सन् वक्तव्यः' इस वार्तिकसे आशङ्का अर्थमें सन माना गया कि-किनारेके गिरनेकी आशङ्का है। पर फिर वही बात भी रखी गई कि-यहांपर भी इच्छा अर्थमें ही सन् किया जाय। तब प्रश्न उपस्थित होता है कि-किनारा अचेतन होनेसे उसमें गिरनेकी इच्छा कैसे हो सकती है? इस पर नया वार्तिक आया कि-'सर्वस्य वा चेतनावत्त्वात्' (अर्थात् सांसारिक सभी पदार्थ चेतना वाले (चेतन) होते हैं। इस पर भाष्यकार उदाहरण कहते हैं-अथवा सर्वं चेतनावत्। एवं हि आह-कंसकाः सर्पन्ति, शिरीषोऽयं स्वपिति, सुवर्चला आदित्यमनुपर्येति। आस्कन्द कपिलक इत्युक्ते तृणमास्कन्दति। अयस्कान्तमणिम् अयः संक्रामति। ऋषिः पठति-शृणोत ग्रावाणः'

(कृ.य.तै.सं. १।३।१३।१) अर्थात्–इस संसारमें सभी वस्तुएँ चेतन हैं; तभी कहा जाता है–यह सिरसका वृक्ष सो रहा है, सूर्यमुखी फूल सूर्यके सामने रहता है–आदि। तभी वेदने कहा है–पत्थरो! सुनो'।

तब लोक-दृष्टिमें अचेतन कहे जाते हुए भी पत्थर आदि वेदकी दृष्टिमें चेतन कहे हैं। तभी तो पत्थर घटते-बढ़ते रहते हैं। यह महाभाष्यकारका आशय है। इसी बातको 'प्रदीप'कार श्रीकैयटने भी स्पष्ट किया है–'सर्वस्य वेति–आत्माद्वैतदर्शनेनेति भावः। ऋषिरिति। वेदः सर्वभावानां चैतन्यं प्रतिपादयतीत्यर्थः। वैचित्र्येण च पदार्थानामुपलम्भात् सर्वचेतनधर्मः सर्वत्र नोद्भावनीयः'। इसीकी स्पष्टता उद्योतकार श्रीनागेशभट्टने की है–वैचित्र्येणेति। चेतनेषु मनुष्येष्वपि नानाजातीय-व्यवहारदर्शनादिति भावः। सर्वत्र परिणामदर्शनेन चेतनाधिष्ठानं विना च तदसत्त्वात् सर्वस्य तदधिष्ठितत्वं ज्ञायते–इति तात्पर्यम्। (अर्थात् वेदने सभी पदार्थोंको चेतन कहा है; क्योंकि–आत्मा सर्वव्यापक होता है। और फिर सब पदार्थ विचित्रतासे मिले हुए होते हैं; अतः सब चेतनोंके धर्म आपसमें एक-जैसे मिल जावें–यह सम्भव नहीं। चेतन-मनुष्योंमें भी किसीको सर्वाङ्गमें लकवा हो जावे; न वह हिल सकता है और न ही बोल सकता है। सब पदार्थोंमें परिणाम (परिवर्तन) दीखता है, अतः सभी पदार्थ आत्माधिष्ठित हैं।)

कई लोग आत्माको सर्वव्यापक मानकर भी जिसमें चित्त

नहीं होता; उसे अचेतन कहते हैं; और चित्तवालोंको चेतन मानते हैं, पर 'तच्च (मनः) प्रत्यात्मनियतत्वाद् अनन्तम्' (तर्कसं.) आत्माके साथ मन (चित्त) भी अवश्य होता है। हाँ, कहीं वह अभिव्यक्त होता है, कहीं अनभिव्यक्त। यही चेतन-अचेतनका व्यावहारिक भेद है; पर होते सभी चेतन हैं।

महाभाष्यके उक्त उद्धरणमें सबको 'चेतनावत्' कहा है—'चेतनवत्' नहीं कहा। जोकि—'दुष्कृतं चरकाचार्यम्' नामक निबन्धमें उसके लेखकने पृ. ६ की टिप्पणीमें लिखा है—'वस्तुतः 'अभिमानी देवता'की कल्पना भी अर्वाचीन आचार्यों द्वारा सृष्ट हुई है। प्राचीन आचार्य 'अचेतनेषु चेतनावत्' अर्थात् अचेतनमें चेतनवद् व्यवहार औपचारिक (गौण) मानते थे, इसी नियमसे ही 'शृणोत ग्रावाणः' आदि वैदिक-वाक्योंका सामञ्जस्य उपपन्न हो जाता है। उसकेलिए अभिमानी देवताकी कल्पनाकी कोई आवश्यकता भी नहीं है'। यह उक्त लेखककी बात ठीक नहीं है। यह कथन महाभाष्यस्थ उक्त वार्तिकके आधारसे प्रवृत्त प्रतीत होता है। परन्तु उसमें 'चेतनावत्' है, 'चेतनवत्' नहीं; और यहाँ मतुप् प्रत्यय है, वति नहीं। मतुप्के 'म' को 'मादुपधायाश्च' (पा. ८।२।९) से 'व' हुआ-हुआ है। अतः यहाँ भाव यह है कि—सभी जड़-चेतन कहे जानेवाले पदार्थ चेतनावत् अर्थात् चेतनावाले (चेतन) हैं, उनमें चेतना हुआ करती है। जब ऐसा है; तब अभिमानी देवताकी सिद्धि स्वतः वैदिक हो जाती है। उसी कारण सभी पदार्थ लोकदृष्टिमें जड़ कहे जाते

हुए भी चेतन सिद्ध हुए। हाँ, कहीं चेतना अभिव्यक्त होती है, कहीं अनभिव्यक्त। मनुष्यमें भी जब सब अङ्गोंमें लकवा हो जाता है, तो वह हिल नहीं सकता, चल नहीं सकता, बोल नहीं सकता, तब क्या वह मनुष्य अचेतन कहा जायगा? कभी नहीं! वर्तमान विज्ञान भी अचेतन कही जाती हुई वस्तुओंकी चेतनताकी पुष्टि करता है। इस विषयमें 'आलोक' (५) देखना चाहिये। इस प्रकार जब पत्थरमें भी सुननेकी शक्ति दिखलाई गई है, तब पशु-पक्षियोंके बोलनेमें क्या आश्चर्य?

परमात्माकी विलक्षण महिमासे इसमें भी असम्भव कुछ नहीं। पशु-पक्षियोंमें कोई भाषा तो अवश्य है, जिससे वे आपसमें व्यवहार करते हैं, इसमें तो किसी भी संशयालुको नकार नहीं हो सकता, इसमें वैज्ञानिकोंकी गवेषणा भी है। एक अँग्रेजने वनमें रहते हुए बहुतसे बन्दरोंको अपना विश्वासी बना लिया। तब उसने उनके सभी तरहके शब्दोंका ग्रामोफोन-यन्त्रमें रिकार्ड कर लिया। जब वही रिकार्ड की हुई आवाज उसने अन्य बन्दरोंको सुनाई; उससे वे कभी प्रसन्न, कभी दुःखी, और कभी हैरान हो जाते थे। इस प्रकार उस अँग्रेजने बहुत बार अनुभव करके उनकी भाषाका ज्ञान ठीक-ठीक कर लिया। इससे सिद्ध हुआ कि-पशु एवं पक्षियोंकी भी भाषा अवश्य है, हम उसे नहीं जान सकते, यह अन्य बात है। क्या हम पहले अंग्रेजी वा अरबी वा जर्मनी वा फ्रांसीसी भाषाओंको सीखनेसे पूर्व जानते थे? केवल हमारी भाषाका जानकार अमेरिका

आदि देशोंमें जावे, क्या वह वहाँ वालोंकी और वहाँ वाले हमारी भाषाको जान सकेंगे? यदि नहीं; तब क्या वे सभी मनुष्य नहीं, अथवा हम मनुष्य नहीं?

इस प्रकार जब हमारी भी भिन्न-भिन्न भाषा है; तब यदि पशु-पक्षियोंकी भी हमसे भिन्न भाषा है; और हम उसे जान नहीं सकते; तो इसमें आश्चर्य क्या? इससे उनकी भाषा तो सिद्ध हो ही गई। जैसे एक अँग्रेजने अपनी निपुणतासे बन्दरोंकी भाषाका ज्ञान कर लिया, इस प्रकार यदि हमारे पूर्वज मुनियोंने भी 'यद् दुस्तरं यद् दुरापं यद् दुर्गं यच्च दुष्करम्। सर्वं तत् तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्' (मनु. ११।२३८) (जो भी कठिनतासे प्राप्त होने योग्य, दुर्लभ वा दुष्कर पदार्थ हैं, वे सब तपस्यासे सिद्ध हो जाते हैं, तपस्याकी शक्तिका उल्लंघन नहीं किया जा सकता) इस अलौकिक अपनी तपस्या-शक्तिसे दिव्य अथवा आरूढपतित पशु-पक्षियोंकी भाषा जानकर उनकी बातचीतका अनुवाद करके उन्हें पुराणादिमें लिखा हो; और श्रीराम-जैसे दिव्य अवतारने उनके आशयको जानकर उनसे युद्ध आदिका काम ले लिया हो, तब इसमें असम्भव क्या रहा? इसीलिए ही तो योगदर्शनके विभूतिपादमें कहा है—'शब्दार्थ-प्रत्ययानामितरेतराध्यासात् संकरः, तत्प्रविभागसंयमात् सर्वभूत-रुतज्ञानम्' (१७) इस सूत्रमें कही हुई यौगिक-प्रक्रिया द्वारा सब प्राणियोंके शब्दका ज्ञान हो जाना कहा है।

अब केवल एक ही प्रश्न बचता है कि—'पशुपक्षियोंका पुराण-

इतिहासमें मनुष्यकी तरह बोलना भी आया है, उसकी सङ्गति कैसे है'? यहाँ भी दूरदर्शिताकी आवश्यकता है कि पशु-पक्षियों-में ऐसा विकास नहीं है कि-वे हमारी तरह स्वतन्त्र होकर बोलें; पर उनमें चाहे थोड़ी क्यों न हो, पर मनुष्यकी तरह भाषण-शक्ति है अवश्य। यदि मनुष्योंको भी जन्मसे वर्णात्मक शब्द न सिखलाये जाएँ; तब वे भी पशु-पक्षियोंकी भांति अव्यक्त ही बोलें। बिना सिखाये जन्मसे वर्णात्मक शब्दका प्रयोग वे भी न कर सकें। इसमें मनुष्योंके बच्चे ही उदाहरण बन सकते हैं।

भेड़ियोंकी मांदोंसे प्राप्त हुए मनुष्य बालकोंमें जो चाहे अब युवा भी हो चुके हैं, यह देखा गया है। वे शिक्षकके बगैर न तो खुद पैरोंके बल ठहर सके, न चल सके, किन्तु पशुओंकी भांति चार पावोंसे चलते थे। वे शिक्षित मनुष्यकी तरह स्वाभाविक ज्ञानसे स्पष्टतासे नहीं बोल सकते थे, किन्तु 'हुँ-हुम्' आदि अव्यक्त ही बोलते थे। हाथोंसे कुछ भोजन लेकर नहीं खाते, किन्तु मुंहसे ही लेकर उसे खाते थे। और पानी भी पशुकी तरह ही पीते थे। इससे स्पष्ट है कि-मनुष्य-बालकोंमें भी जो कुछ विशिष्ट बोलना-चालना आदि व्यवहार प्राप्त होता है; वह सिखलानेसे ही होता है। स्वतः नहीं। यह पहले कई मुसलमान राजा भी परीक्षित कर चुके हैं। उन्होंने सद्यः-प्रसूत बच्चोंको वन आदि एकान्तस्थानमें रखा कि जहाँ उनका किसी मनुष्यसे भाषण-शिक्षण सम्बन्ध न हो। वे स्वतः नहीं सीख सके, न स्पष्ट बोल सकते थे। पशुओंकी भांति वे चीखते-चिल्लाते थे, जैसे

गूंगे पुरुष किया करते हैं।

इससे पशु-पक्षियोंमें वर्णात्मक भाषाके शिक्षणार्थ उनके जन्मसे ही पुरुषके प्रयत्नकी अपेक्षा रहा करती है। इसमें सिखानेसे बोलने वाले तोते-मैंना ही प्रमाण हैं। वे पुरुष के प्रयत्नसे ही बोलते हैं—यह प्रत्यक्ष है। यदि उनमें भी पुरुषका प्रयास न हो, तब वे तोते भी मनुष्यकी भांति न बोल सकें, किन्तु अव्यक्त ही। मनुष्य-शिशुको जन्मसे ही जो भाषा मुलतानी, चाहे पञ्जाबी, हिन्दी, संस्कृत या अंग्रेजी आदि भाषा सिखलाई जाएगी; उसी भाषाको वह अनायास ही बोलनेमें समर्थ होता है; अन्य भाषाको नहीं। इस प्रकार पशु-पक्षी भी जन्मसे ही माता-पिता द्वारा जिस भाषाके संस्कारको पाते हैं, उसी भाषाको बोलते हैं; वे भी दूसरी भाषाको कैसे बोल सकें ?

पाश्चात्य वैज्ञानिक-विद्वान डार्विन के मतानुसार बन्दर ही उन्नति करके मनुष्य बने। इस प्रकार जब वे वानर नर बन कर व्यक्त भाषणमें सफल हो गये; तब भैंसे भी उन्नति करके महिषासुर, बगले भी उन्नत होकर बकासुर, बछड़े भी वत्सासुर, सांप भी अघासुर, गधे वा गायें धेनुकासुर बनकर यदि व्यक्त भाषणमें सफल हो जाएँ; तब पाश्चात्योंके अनुयायी वादी भी अपने सन्देहको अपने उक्त आचार्यसे ही दूर कर लें।

इन वर्तमान रीछ-वानर आदिका व्यक्त भाषण हम भी सामान्यरूपसे नहीं मानते, किन्तु हमारा यह अभिप्राय है कि-जो गतजन्मसे विशेषसंस्कारशाली अथवा आरूढ़-पतित पुरुष

कर्मवश, अथवा देवता, ऋषि, मुनि, योगी अपनी इच्छासे पशु वा पक्षी बनें, वे पहले जन्मके संस्कारोंको भी धारण करते हैं। उनसे यदि प्रयत्न किया जावे, तब वे मनुष्यकी भांति बोलने तथा अन्यान्य कार्योंको करनेमें अवश्य समर्थ हो सकते हैं; क्योंकि—वे प्रकृतिके दास साधारण पशु-पक्षियोंसे विलक्षण हुआ करते हैं, यह पुनर्जन्म मानने वाले लोगोंको पूर्व-जन्मके संस्कार इस जन्ममें अवश्य मानने पड़ेंगे। कभी किसी तपस्वीके तपोबलसे भी पशु-पक्षीको मानुषी वाणी बुलवाई जा सकती है, जैसे कि—सन्त ज्ञानेश्वर द्वारा सिरपर हाथ रखनेसे भैंसा भी वेदमन्त्र बोलकर संशयालु व्यक्तियोंके आश्चर्यका विषय बन गया था। श्रीकन्हैयालाल मिश्र नामके एक पण्डितने हरिद्वारके कुम्भमें एक ऐसे बन्दरको देखा था, जो हिन्दीमें अपना नाम लिख दिया करता था। वह पैसे लेकर बाज़ारसे विशेष-विशेष वस्तुओंको खरीद कर भी ला दिया करता था—यह बात 'ब्राह्मणसर्वस्व' (इटावा)के पुराणाङ्कमें लिखी गई है—यह हम गत निबन्धमें सूचित कर चुके हैं।

हमने मुलतानमें २१ अक्टूबर सन् १९३५ को एक बैल देखा था। वह भीड़मेंसे किसी विशेष नाम वाले पुरुषके ढूंढनेकेलिए कहा हुआ तीन चक्कर लगाकर उसी पुरुषके सामने जाकर ठहर जाता था। हमारे सामने की बात है। हमारे साथ ठहरे हुए एक व्यक्तिने अपने हाथमें रखी हुई इत्रकी दो शीशियाँ दिखलाते हुए, बैल वालेको कहा कि—बैलको कहो कि—इत्रकी

शीशियों वालेको ढूंढे। पर उसने वे शीशियाँ अपने पास न रखकर अपने सामनेकी भीड़में किसी एक के हाथ पकड़वा दीं, जिसका मुझे भी पता न लग सका। बैलने तीन चक्कर लगाये; और मेरे सामनेकी भीड़में एक पुरुषके पास जाकर ठहर गया। मैंने समझा कि—बैल यहाँ गलती कर गया; पर नहीं, तब उस सामनेके व्यक्तिने इत्रकी वे शीशियाँ दिखला दीं। कार्यकी सिद्धि होगी वा नहीं; इसपर वह विधि-निषेधका सिर हिलाता था। आजकल देहलीमें भी वैसा बैल दीखता है। इस प्रकारके चमत्कार विशेषरूपसे मननीय हैं।

इस प्रकार मुलतानमें हमारे 'श्रीसनातनधर्म संस्कृत कालेज-में एक कुत्तेका मास्टर एक छोटे कुत्तेको ४ फर्वरी सन् १६४१ को ले आया था। वह कुत्ता विशेष खेल दिखलाता था। उसके आगे चाकसे अङ्क लिख कर दें, तो वह उनका जोड़ लगाता था। अङ्क लोहेके बने होते थे; वह जमा वाले स्थानमें रखता जाता था। घड़ी, चाकू, ऐनकें भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को रख दी जाती थीं; जिसका नाम बताया जाता था कि—अमुककी ऐनक (चश्मा) उठा लाओ, वह मुंहसे उठा लाता था। पांच वा दस वा सौ के नोट रख देनेपर जिस नोटको उसे उठा देनेको कहा जाता था—उठा लाता था। उसका मास्टर कहता था कि—सब पशु-पक्षियोंको इसी प्रकार सिखलाया जा सकता है। कबूतर वा बाज़ नियत पुरुषको चिट्ठी दे आ सकते हैं। कुत्ते वा बन्दर लड़केका बस्ता उठाकर उसको स्कूलमें पहुँचाने जा सकते हैं, और

उस लड़केके वापिस आनेके टाइममें स्वयं उन्हें लेने चले जा सकते हैं। गायको इस प्रकार सिखलाया जा सकता है कि–उसे खूंटेसे न भी बांधा जावे, फिर भी वह घरमें ही बैठी रहेगी; कहीं चली नहीं जावेगी। नियत समयसे पहले बछड़ेको दूध नहीं पीने देगी। सर्कस वाले लोग हाथीको सिखलाकर चौकीपर इस प्रकार बैठाते हैं कि–वह गणेश-जैसा मालूम होने लगता है। रीछसे बाईसीकल चलवाते हैं। तोते द्वारा साइकल चलवाते हैं। एक कुत्तोंका विश्वविद्यालय अमेरिकामें खोला गया है, जहाँ कुत्तोंको सिखलाया जाता है, और उन्हें उपाधि दी जाती है–यह 'नव-भारत'में प्रकाशित हुआ था, साप्ताहिक 'संस्कृतम्'के १५।६ अङ्क २८-११-४४ में भी।

महाकवि बाणभट्टने कुमारपालित मन्त्रीके द्वारा शूद्रक-राजाको वैशम्पायन तोतेके बोलनेमें आश्चर्य प्रकट करनेपर कादम्बरीमें कहा था—'किमत्र चित्रम् ? (इसमें हैरानीकी क्या बात है ?) एते हि शुकसारिका-प्रभृतयो विहङ्गविशेषा यथाश्रुतां वाचमुच्चारयन्तीति अधिगतमेव देवेन। तत्रापि अन्यजन्मोपात्त-संस्कारानुबन्धेन वा, पुरुषप्रयत्नेन वा, संस्कारातिशय उपजायते-इति नातिचित्रम् (यह पक्षी सुनी हुई बातका उच्चारण कर सकते हैं। गत जन्मके संस्कारके कारण उनमें पुरुषके प्रयत्नविशेषसे अतिशयित संस्कार हो जाया करता है; इसमें बहुत हैरानीकी बात नहीं)। अन्यद् एतेषामपि पुरुषाणामिव अतिपरिस्फुटाभिधाना वागासीत्। अग्निशापात्तु अस्फुटालापता शुकानामुपजाता'

(इनकी भी पहले पुरुषोंकी भांति स्फुट वाणी हुआ करती थी)।

इसके अतिरिक्त दैवी सृष्टिका कोई प्राणी जब हनूमान-आदि वानरोंका, जटायु आदि पक्षियोंका, जाम्बवान आदि रीछोंका, वासुकि आदि सर्पोंका शरीर लेता है, तब भी वह अलौकिक-शक्तिशाली होनेसे दैवी गुणोंको नहीं छोड़ता। नट रङ्गमञ्चमें स्त्रीरूप धारण करता हुआ भी अपने पुरुषत्वको नहीं खो देता। तब उनका मनुष्यकी भांति भाषण अलौकिक-शक्ति वाला होना, अपना रूप परिवर्तन करना, पर्वतोंका उखाड़ना, उनका उठाना, और समुद्रको लांघना, पर्वत खण्डों वा वृक्षखण्डों-को उखाड़कर लड़ना आदि उपपन्न हो जाता है। इन वानरों-का देवावतार होना हम गत निबन्धमें दिखला चुके हैं। 'यह मनुष्य थे' इसका भी गत निबन्धमें हम खण्डन कर चुके हैं।

इस प्रकार पुराण-इतिहासोंमें ऐसे पशु-पक्षियोंकी अपवाद-स्थल मानकर मनुष्यकी तरह भाषणशीलता समझनी चाहिये। अपवादस्थल माने बगैर कहीं भी निर्वाह नहीं होता। जब कि-अमेरिकाके मोण्टरीयल नगरमें एक सात वर्षका लड़का ऐसे रोगमें फँस गया, जिसके कारण उसकी बाहें और जांघें पत्थर की बन गईं। वैज्ञानिक इस बालकको देखकर बहुत हैरान हैं। इसमें यदि अपवाद-स्थल स्वीकार न किया जावे; तो उसके पत्थर होनेमें क्या युक्ति होगी? फिर सभीके अङ्ग वैसे पत्थर क्यों नहीं हो जाते?

बृहद्देवतामें श्रीशौनकाचार्यने कहा है—'तमृषिं निषिषेधेन्द्रो

मैवं वोचः क्वचिन्मधु। नहि प्रोक्ते मधुन्यस्मिन् जीवन्तं त्वोत्सृजाम्यहम्।' (३।१९) 'तमृषिं त्वश्विनौ देवौ विधिवद् मध्वयाचताम्। स च ताभ्यां तदाचष्ट यदुवाच शचीपतिः। (२०) तमब्रूतां तु नासत्यौ आश्वेन शिरसाऽभवन्। मध्वाशु ग्राहय त्वं तन्नेन्द्रश्च त्वां हनिष्यति (२१) आश्वेन शिरसा तौ तु दध्यङ्ङाह यदश्विनौ। तस्येन्द्रोऽहरत् सन्तं (?] व्यधातामथ तौ शिरः' (२२)।

यहाँ दधीचिने अश्वके सिरसे अश्वियोंको मधु-विद्या बताई, जिसे बतानेकेलिए इन्द्र निषेध कर गया था, और सिर काटनेका डर दे गया था। तब अश्वियोंने दधीचिका सिर काटकर उसपर अश्वका सिर चढ़ा दिया; उसी अश्वके सिरसे दधीचिने मधु-विद्या अश्वियोंको दी। इन्द्रने उस अश्व शिरको काट डाला। तब अश्वियोंने उसका काटा हुआ अपना सिर उसपर प्रतिष्ठित कर दिया। यहां जब सामर्थ्य-विशेषसे घोड़ेका सिर भी बोल सका; तब वन्दरोंके बोलनेमें क्या कठिनता रही ?

ऊपरका इतिहास ब्राह्मणभागमें भी कहा गया है—'स होवाच-इन्द्रेण वै उक्तोस्मि, एतं चेद् अन्यस्मै अनुब्रूयाः, तत एव ते शिरः छिन्द्याम्-इति। तस्माद् वै बिभेमि, यद् वै मे स शिरो न छिन्द्याद्। न वाम् [अश्विनौ] उपनेष्ये' (शत. १४।१।१।२२) यह यज्ञकी पूर्णता सिद्ध करनेवाली विद्याके लेनेकेलिए आये हुए अश्वियोंको अथर्वाके लड़के दध्यङ् ऋषिने कहा था। तब इन्होंने कहा—

'तौ [अश्विनौ] ह ऊचतुः—आवां त्वा तस्मात् त्रास्यावहे' [हम तुम्हें इन्द्रसे बचावेंगे] (प्र.) कथं मा त्रास्येथे ? (मुझे कैसे बचाओगे ?) (उ.) यदा नौ उपनेष्यसे, अथ ते शिरः छित्त्वा अन्यत्र अपनिधास्यावः। अथ अश्वस्य शिर आहृत्य तत् ते प्रतिधास्यावः' (जब हमें विद्या दोगे; तब तुम्हारा सिर काटकर बना रखेंगे, तुम पर घोड़ेका सिर लगा देंगे। उस सिरसे हमें विद्या दोगे। उस सिरको इन्द्र काट लेगा। तब फिर तुम्हारा अपना सिर लगा देंगे) तेन (अश्वशिरसा) नौ (आवाम्) अनुवक्ष्यसि। स यदा नौ (अश्विनौ) अनुवक्ष्यसि, अथ ते (दधीचः) तद् (आश्वं) इन्द्रः शिरः छेत्स्यति। अथ ते स्वँ् शिर आहृत्य, तत् ते प्रतिधास्याव इति। तथा-इति' (श. १४।१।१।२३)

'तौ (अश्विनौ दध्यङ्) उपनिन्ये। तौ यदा उपनिन्ये, अथ अस्य शिरः छित्त्वा अन्यत्र अपनिदधतुः। अथ अश्वस्य शिर आहृत्य तद् ह अस्य प्रतिदधतुः। [तेन अश्वशिरसा] ह आभ्याम् [अश्विभ्याम्] अनूवाच। स यद् आभ्याम् अनूवाच, अथ अस्य तद् इन्द्रः शिरः चिच्छेद। अथ अस्य स्वँ् शिर आहृत्य तद् ह अस्य प्रतिदधतुः' (शत. २४) (वैसा ही किया गया) यहां ब्राह्मणभागात्मक वेदमें एक ऋषिकी घोड़ेवाले सिरसे भी सम्भाषणकी शक्ति बताई गई है। जब ऐसा है, तो पशु-पक्षियोंका भाषण भी वैदिक सिद्ध हुआ। शतपथ-ब्राह्मणको स्वा.द.जी भी प्रमाण मानते थे; इसलिए अपने भाष्यमें स्थान-स्थान पर शतपथके प्रमाण देते हैं; बल्कि अपने यजुर्वेदके भाष्यको स्वामी

इसलिए प्रमाण बताते हैं कि-वह शतपथानुकूल किया गया है। उसी शतपथमें जब पशु-अश्वके मुख द्वारा मनुष्यकी भांति भाषण-शक्ति और विद्यादान-शक्ति दिखलाई गई है, और उसमें असम्भव नहीं, वैसे ही अपवाद-न्यायसे पौराणिक पशु-पक्षियोंके भाषणमें भी क्या असम्भव रहा ?

घोड़े वाले सिरसे मनुष्यकी भांति भाषणमें न केवल ब्राह्मणभागकी ही साक्षी है, बल्कि-वादिप्रतिवादिसम्मत, वादियोंसे वेद नामसे सम्मत मन्त्रभागकी भी इसमें साक्षी है। देखिये-'दध्यङ् ह यन्मधु आथर्वणो वाम् [अश्विनौ] [इस मन्त्रके अश्वी देवता (वाच्य) हैं] अश्वस्य शीर्ष्णा प्रयदीमुवाच' (ऋ.सं. १।११६।१२) (अथर्वाके लड़के दधीचिने हे अश्विनो ! तुम दोनों-को घोड़ेके सिरसे मधुविद्याका उपदेश दिया)। यही अन्य मन्त्रमें भी स्पष्ट किया गया है। जैसे कि-'युवं दधीचो मन आविवासथः, अथ शिरः प्रति वाम् [अश्विनौ] अश्व्यं वदत्' (ऋ.सं. १।११६।६) यहाँ पर अश्वमुखके द्वारा जैसे भाषणशक्ति तथा विद्याप्रदानशक्ति बताई गई है; वैसे ही अपवाद-न्यायसे पशु-पक्षियोंका पुराण-इतिहास वर्णित भाषण भी वैदिक सिद्ध हो गया। हाथी-द्वारा मनुष्य-जैसे बोलनेमें हम गत-निबन्धमें आर्य-मुसाफिर श्रीलेखराम जी की साक्षी भी दे चुके हैं।

सर्वसाधारण पशु-पक्षीका मनुष्यकी तरह भाषण तथा व्यवहार हम भी नहीं बताते, किन्तु देवांश पशु-पक्षियोंका ही; अथवा आरूढ़-पतितोंका बताते हैं। तभी महाभारतानुसार हंस-

से मनुष्यकी वाणी द्वारा दमयन्तीको जो नलका परिचय प्राप्त हुआ था; वहां भी नैषधचरितमें उसे देवांश होनेसे वन्दनीय माना है।

इस प्रकार सामवेद-छान्दोग्योपनिषद्में 'अथ ह हंसा निशायामतिपेतुः। तद्धैव हंसो हंसमभ्युवाद' (४।१।२) यहांपर हंसोंका संवाद कहा गया है। उसे जानश्रुति पौत्रायणने सुना (४।१।५) 'तं हंस उपनिपत्य अभ्युवाद' (४।७।२) यहां पर जबालाके लड़के सत्यकामको हंसने उपदेश दिया था। तब महाभारतमें हंसका नलदमयन्तीके साथ तथा मार्कण्डेय-पुराणमें जैमिनिके साथ हंसोंका संवाद भी समूल सिद्ध हुआ। इसी प्रकार 'अथ ह एनम् ऋषभोऽभ्युवाद-सत्यकाम ३ इति' (छान्दो. ४।५।१) यहां पर वृषभका संवाद कहा गया है। 'मद्गुष्टे पादं वक्ता' (४।८।१) यहांपर एक जलके हंसविशेषका संवाद कहा गया है।

यह बात सामान्य पशु-पक्षियोंकी है, परन्तु हनुमान्-आदि वानरों, जटायु आदि गीधों और जाम्बवान्-आदि रीछोंके पहलेसे ही देवता होनेसे उनके अवतार होनेके कारण, देवताओंके 'विद्वाँ सो हि देवाः' (शत. ३।७।३।१०) जन्मसे विद्वान् होनेके कारण इस जन्ममें उनका मनुष्यकी भांति बोलने तथा मानुषी व्यवहार करने और शास्त्रादि-ज्ञान रखनेमें थोड़ा भी सन्देह न रह सका। तब यह विषय समाप्त होनेसे इस निबन्ध को हम यहीं रोकते हैं। अब इस इतिहासचर्चामें ७म पुष्पसे अनुवृत्त श्रीराम-सीताकी वैवाहिक आयुपर विचार किया जाता है।

स० ध० ८